॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अनन्तकी ओर

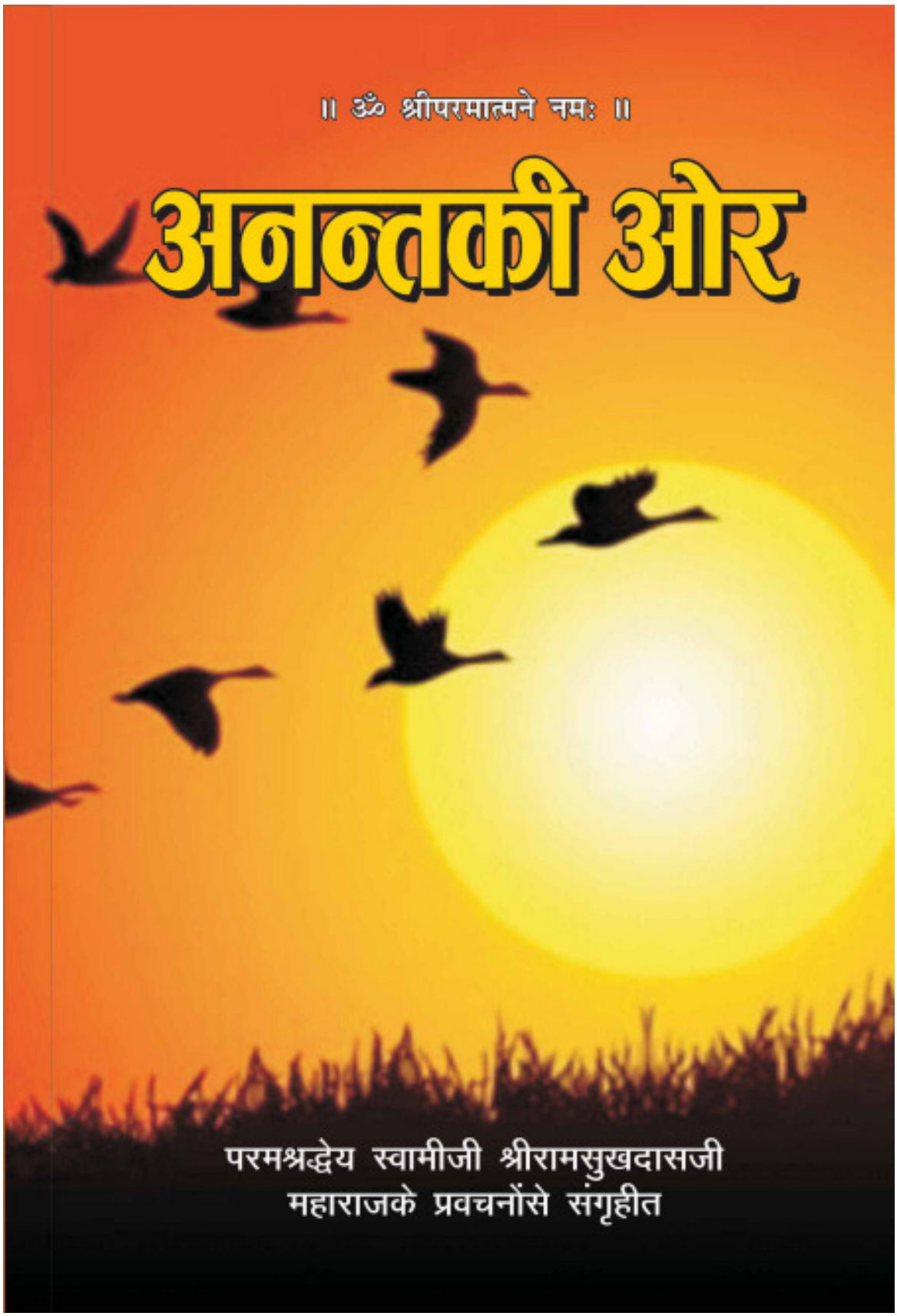

परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी
महाराजके प्रवचनोंसे संगृहीत

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अनन्तकी ओर

[परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके
प्रवचनोंका सार-संग्रह]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

'हे प्रभो! आप ही मेरी माता हो, आप ही पिता हो, आप ही बन्धु हो, आप ही सखा हो, आप ही विद्या हो, आप ही धन हो। हे देवदेव! मेरे सब कुछ आप ही हो।'

संकलन तथा सम्पादन—
राजेन्द्र कुमार धवन

गीता प्रकाशन,
कार्यालय—माया बाजार, पश्चिम फाटक,
गोरखपुर—273001 (उ०प्र०)
फोन—09389593845; 07668312429
e-mail: radhagovind10@gmail.com

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

नम्र निवेदन

इस युगके अप्रतिम महापुरुष परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज अहोरात्र ऐसी युक्तियोंकी खोजमें लगे रहते थे, जिनसे मानवमात्र शीघ्र-से-शीघ्र तथा सुगमतापूर्वक अपना कल्याण कर सके। इस विषयमें उन्होंने अनेक क्रान्तिकारी युक्तियोंकी खोज भी की और उन्हें अपने प्रवचनों तथा पुस्तकोंके माध्यमसे जनतातक पहुँचाया। इसके पीछे उनका जो भाव था, वह उनके एक प्रवचनमें इस प्रकार प्रकट हुआ—

'आप ऊँचे बन जायँ, महात्मा बन जायँ, संसारमें आपकी कीर्ति हो जाय, आपके दर्शनसे लोगोंका कल्याण हो जाय—ऐसा मैं चाहता हूँ, इसीलिये ये बातें कहता हूँ।' (१.२.९९, प्रातः ९, गाँधीधाम)।

ऐसा भाव होनेके कारण ही परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराजकी पुस्तकोंमें एक विलक्षण शक्ति है, जो पढ़नेवालेके हृदयमें प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षरूपसे अमिट छाप छोड़ती है।

प्रस्तुत पुस्तक 'अनन्तकी ओर' में परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज द्वारा **सितम्बर २००० से लेकर अप्रैल २००१ तक** दिये गये प्रवचनोंका सार-संग्रह दिया जा रहा है। ये प्रवचन क्रमशः जसवंतगढ़, कुचामन सिटी, जयपुर, वृन्दावन, बीकानेर, कोलायत, पटना, बक्सर, कलकत्ता, निजामाबाद, हैदराबाद, नागपुर, बीकानेर, सींथल, गोरखपुर, लखनऊ और ऋषिकेशमें दिये गये थे। इन प्रवचनोंमें परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराजद्वारा श्रोताओंके विविध लौकिक-पारमार्थिक प्रश्नोंके उत्तर भी सम्मिलित हैं, जो सभीके लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। इस पुस्तकमें मानवमात्रके कल्याणकी अत्यन्त सरल युक्तियोंका समावेश हुआ है। साधकोंको इनसे लाभ उठाना चाहिये।

सन्त शरीरसे प्रकट नहीं होते, अपितु वाणीसे प्रकट होते हैं। परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज वर्तमानमें शरीररूपसे हमारे दृष्टिगोचर नहीं हैं, पर वाणीरूपसे वे हमारे बीच ज्यों-के-त्यों विद्यमान हैं और सदा विद्यमान रहेंगे। उनकी मर्मस्पर्शी वाणी युगोंतक साधकोंका मार्गदर्शन करती रहेगी।

परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराजके सिद्धान्तसे, उनके विचारोंसे पूर्णतः परिचित होनेके लिये उनके सम्पूर्ण साहित्यका अध्ययन करना चाहिये।

किसी भी देश, जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदिका कोई भी जिज्ञासु यदि प्रस्तुत पुस्तकका मनोयोगपूर्वक अध्ययन करेगा तो उसके साधनमें अवश्य उन्नति होगी, इसमें सन्देह नहीं। प्रत्येक साधकसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि कम-से-कम एक बार तो इस पुस्तकको अवश्य ही पढ़ें।

श्रीकृष्णजन्माष्टमी
वि० सं० २०७०

निवेदक—
राजेन्द्र कुमार धवन

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अनन्तकी ओर

मंगलाचरण

पराकृतनमद्बन्धं परं ब्रह्म नराकृति।
सौन्दर्यसारसर्वस्वं वन्दे नन्दात्मजं महः॥

'जिन्होंने नमस्कार करनेवालोंके भव-बन्धनको दूर कर दिया है और जो मनुष्यके आकारमें साक्षात् परब्रह्म हैं, उन सौन्दर्यके सारसर्वस्व नन्दनन्दनरूप दिव्य तेजकी मैं वन्दना करता हूँ।'

प्रपन्नपारिजाताय तोत्त्रवेत्रैकपाणये।
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः॥

'जो शरणागत भक्तोंको कल्पवृक्षके समान मनोवांछित फल देनेवाले हैं, जिनके एक हाथमें घोड़ोंकी लगाम और चाबुक है तथा दूसरा हाथ ज्ञानमुद्रासे सुशोभित है, ऐसे गीतारूपी अमृतको दुहनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ।'

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्।
देवकी परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥

'जो वसुदेवजीके पुत्र, दिव्यरूपधारी, कंस एवं चाणूरका नाश करनेवाले और देवकीजीके लिये परम आनन्दस्वरूप हैं, उन जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ।'

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

'वंशीसे सुशोभित हाथोंवाले, नवीन मेघके समान कान्तिवाले, पीताम्बरधारी, बिम्बफलके समान लाल होंठोंवाले, पूर्णचन्द्रके समान सुन्दर मुखवाले तथा कमलके समान नेत्रोंवाले श्रीकृष्णसे बढ़कर मैं कोई और तत्त्व नहीं जानता।'

हरिः ॐ नमोऽस्तु परमात्मने नमः।
श्रीगोविन्दाय नमो नमः।
श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः।
महात्मभ्यो नमः।
सर्वेभ्यो नमो नमः।

* * * * * * * * *

'सच्चिदानन्दघन परमात्माको और सन्त-महापुरुषोंको सादर अभिवादन कर आपलोगोंके समक्ष कुछ बातें कहनेके लिये एक चेष्टा कर रहा हूँ। हमारी बातोंमें अच्छी बातें मालूम दें, वे शास्त्रोंके सिद्धान्तकी, वेदोंकी, पुराणोंकी, स्मृतियोंकी, रामायण आदि ग्रन्थोंकी हैं; और त्रुटियाँ मालूम दें, वे मेरी व्यक्तिगत हैं। व्यक्तिगत बातोंकी तरफ ध्यान न देते हुए वास्तविक सिद्धान्तकी तरफ ध्यान

देंगे, ऐसी प्रार्थना है।'

* * * * * * * * *

सन्तोंकी एक-एक बातपर अगर ख्याल करें तो एक-एक बातसे बेड़ा पार हो जाय! जो वस्तु मिलने और बिछुड़नेवाली है, वह अपनी नहीं होती, अपने लिये लाभदायक नहीं होती—इस एक बातको मान लें तो बेड़ा पार हो जाय! इस एक बातमें बहुत विलक्षणता भरी हुई है! जबतक मनुष्य मिलने और बिछुड़नेवाली वस्तुको अपनी और अपने लिये मानता है, तबतक वह बिल्कुल भूलमें ही है। जबतक वह इस भूलको मिटायेगा नहीं, तबतक कल्याण नहीं होगा.....नहीं होगा.....नहीं होगा! मिलने और बिछुड़नेवाली वस्तु केवल दु:ख देनेवाली होगी। उससे सिवाय दु:खके और कुछ नहीं मिलेगा। नया-नया, तरह-तरहका दु:ख आता ही रहेगा। **जबतक आपके भीतर यह बात रहेगी कि मिली हुई वस्तु अपनी और अपने लिये है, तबतक धोखा-ही-धोखा, धोखा-ही-धोखा, धोखा-ही-धोखा होगा—यह अकाट्य नियम है, जो कभी फेल नहीं होगा!** आप इस एक बातपर खूब गहरा विचार करो। मिले हुएको अपना माननेसे सिवाय रोनेके कुछ नहीं मिलेगा। सदा रोते ही रहोगे!

जो वास्तवमें अपना होता है, वह कभी बिछुड़ सकता ही नहीं। केवल भगवान् ही खास अपने हैं। वे कभी हमसे बिछुड़ते नहीं, बिछुड़ सकते ही नहीं। वे हमें मिले हुए ही हैं। केवल उधर हमारी दृष्टि नहीं है। सन्तोंने कहा है कि जो सदासे मिला हुआ है और कभी बिछुड़ता नहीं, ऐसा हमारा साथी एक भगवान् ही हैं। उनके सिवाय और कोई हमारा साथी कभी नहीं हो सकता।

* * * * * * * * *

भगवान् सर्वसमर्थ हैं। उनमें सब तरहकी सामर्थ्य है, पर हमसे अलग होनेकी सामर्थ्य नहीं है! वे सबके परम सुहृद् हैं—'**सुहृदं सर्वभूतानाम्**' (गीता ५। २९)। सुहृद् और मित्रमें फर्क होता है। जो मित्र होता है, वह उपकारके बदले उपकार करता है, पर सुहृद् सदा उपकार ही करता है। दूसरा अपकार करे तो भी वह उपकार ही करता रहता है। उपकार करना उसका स्वभाव होता है। सन्तोंके लक्षणोंमें भी यही बात आती है—'**सुहृदः सर्वदेहिनाम्**' (श्रीमद्भा० ३। २५। २१)। भगवान् और उनके भक्त—दोनों ही सुहृद्, बिना हेतु स्वत:-स्वाभाविक सबका हित करनेवाले होते हैं—

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥

(मानस, उत्तर० ४७। ३)

भगवान्का और उनके भक्तोंका क्रोध भी वरदानके समान होता है—'**क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः**' (पाण्डवगीता २३)। सन्तोंके द्वारा अपकार करनेवालेके प्रति भी अपकार नहीं होता, प्रत्युत उपकार ही होता है। उनके द्वारा कभी किसीको बन्धन नहीं होता।

साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम्।
दर्शनान्नो भवेद् बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा॥

(श्रीमद्भा० १०। १०। ४१)

'जिनकी बुद्धि समदर्शी है और हृदय पूर्णरूपसे मेरे प्रति समर्पित है, उन सन्तोंके दर्शनसे बन्धन होना ठीक वैसे ही सम्भव नहीं है, जैसे सूर्योदय होनेपर मनुष्यके नेत्रोंके सामने अन्धकारका होना।'

सन्त-महात्माओंको किसीपर क्रोध भी आ जाय तो भी उनके द्वारा केवल हित ही होता है। दीखनेमें क्रिया अलग-अलग दीखती है, पर भीतरका भाव एक ही होता है। जैसे, माँ बालकको प्यार भी करती है और कभी-कभी थप्पड़ भी लगा देती है। बाहरसे क्रिया तो दो दीखती है, पर

माँका हृदय दो नहीं होता, एक ही रहता है। माँकी जो हितैषिता प्यारमें है, उससे कम हितैषिता मारमें नहीं है। उल्टे मारमें ज्यादा हितैषिता, ज्यादा अपनापन होता है। इसी तरह **सन्त-महात्माओंमें जो कड़ापन होता है, उसमें ज्यादा हित भरा होता है। यद्यपि स्वभावमें न होनेके कारण उनको कड़ाई करनेपर, शासन करनेपर जोर आता है, तथापि दूसरेके हितके लिये उनको कड़ाई करनी पड़ती है। कड़ाई करके वे प्रसन्न, राजी नहीं होते।** नारियलके समान बाहरसे कठोर दीखनेपर भी उनके भीतर रस भरा रहता है!

गीर्भिर्गुरूणां परुषाक्षराभिस्तिरस्कृता यान्ति नरा महत्त्वम्।
अलब्धशाणोत्कषणान्नृपाणां न जातु मौलौ मणयो वसन्ति॥

(रसगंगाधर)

'जब मनुष्य गुरुजनोंकी कठोर शब्दोंसे युक्त वाणीद्वारा अपमानित किये जाते हैं, तभी वे महत्त्वको प्राप्त होते हैं, अन्यथा नहीं। जैसे, मणि भी जबतक शाणपर घिसकर उज्ज्वल नहीं की जाती, तबतक वह राजाओंके मुकुटमें नहीं जड़ी जाती।'

भगवान् और उनके भक्तोंके द्वारा मात्र संसारका हित-ही-हित होता है। उनके द्वारा हितकी वर्षा होती है! इस बातको अगर मनुष्य जान जाय तो वह उनका भक्त हो जाय, उनके चरणोंमें लोटने लगे!

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥

(मानस, सुन्दर० ३४। २)

जैसे अपनी शक्तिसे हम भगवान्‌को जान नहीं सकते, ऐसे ही सन्तोंको भी जान नहीं सकते। उनके पासमें रहते हुए भी नहीं जान सकते! उनको जाननेमें अपनी बुद्धिमानी काम नहीं करती, प्रत्युत उनकी कृपा काम करती है—*'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई'* (मानस, अयोध्या० १२७। २)। भगवान् और उनके भक्तोंके चरित्रको उनकी कृपाके बिना समझ नहीं सकते। इसलिये भगवान्‌को और उनके भक्तोंको पहचाननेवाले कम होते हैं। उनको पहचाननेमें भगवत्कृपाके पात्र भक्त ही चतुर होते हैं। जैसे कपूरकी सुगन्ध जानकार अथवा अनजान—दोनोंको आती है। जानकार जान लेता है कि यह कपूरकी सुगन्ध है, अनजान नहीं जानता। जैसे पीनसके रोगीको सुगन्ध मालूम नहीं होती, फिर भी वह उसके रोगका नाश करती है। ऐसे ही सन्तोंको जानें अथवा न जानें, उनके द्वारा दुनियामात्रका भला होता है।

भगवान्‌के दरबारकी सबसे ऊँची चीज है—सत्संग। जीवन्मुक्त महापुरुष भी सत्संग चाहते हैं! भगवान् शंकर भी सत्संग चाहते हैं! सत्संग अपने पुरुषार्थसे, अपनी चतुराईसे, अपनी योग्यतासे नहीं मिलता। जब भगवान् द्रवित होते हैं, तब सत्संग मिलता है—***'जब द्रवै दीनदयालु राघव साधु-संगति पाइये'*** (विनयपत्रिका १३६। १०)। इसलिये सत्संग मिले तो जानना चाहिये कि भगवान्‌ने विशेष कृपा की है—***'बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता'*** (मानस, सुन्दर० ७। २)! जिनको सत्संग मिलता है, वे संसारमें विशेष भाग्यशाली हैं! परन्तु सत्संगके तत्त्वको हरेक आदमी समझता नहीं। हीरेका मूल्य जौहरी ही समझ सकता है। सत्संगसे दुर्लभ-से-दुर्लभ चीज भी सुलभ हो जाती है। जो परमात्मा कठिन दीखते हैं, वे भी सत्संगसे सुगम हो जाते हैं। परन्तु रात-दिन विषयोंमें फँसा हुआ मनुष्य इसको क्या जाने! क्या जाने भगवान्‌को! क्या जाने भक्तोंको!

*** *** ***

आप मानें या न मानें, आपको जँचे या न जँचे, आप स्वीकार करें या न करें, **अभी मौका**

बहुत बढ़िया आया हुआ है! अगर आप सावचेत हो जायँ तो अभी उद्धार करनेका बहुत सुन्दर मौका है। हमें बहुत जल्दी कल्याण करनेकी बातें मिली हैं। आप तत्परतासे साधन करें तो आपकी बहुत विलक्षण स्थिति हो सकती है।

मेरी प्रकृति और तरहकी है। कोई पूछे, तब मनमें कहनेकी आती है। अगर कोई हृदयसे मार्मिक बात पूछे तो चित्तमें बहुत प्रसन्नता होती है; मैं बहुत राजी होता हूँ! कोई सत्संगकी बात पूछे तो बहुत आनन्द रहता है, प्रसन्नता रहती है! पर आप परवाह ही नहीं करते! आपलोग कृपा करो, मार्मिक बातें पूछो। आपलोगोंकी गलती यह है कि सत्संग सुन लिया और बस, राजी हो गये। आप भगवान्‌की कथा सुनो, आपको फायदा होगा। पर मैं और तरहकी बातें कहता हूँ। मेरी बातोंमें भगवत्सम्बन्धी बातें भी आती हैं, भक्तोंकी बातें भी आती हैं और तर्ककी बातें भी आती हैं, ठीक तरहसे समझनेकी बातें भी आती हैं। समझनेकी बातोंको जितना ज्यादा समझोगे, उतना फायदा ज्यादा होगा।

शरीरादि जितनी सामग्री हमें मिली है, यह अपनी नहीं है और अपने लिये भी नहीं है—यह बात मामूली नहीं है, बड़ी श्रेष्ठ बात है! **आपका शरीर, आपकी वस्तुएँ, आपकी योग्यता, आपका बल आपके काम नहीं आयेगा। यह बात जबतक नहीं समझोगे, तबतक आपकी आध्यात्मिक उन्नति नहीं होगी।** परन्तु आपलोग तब समझोगे, जब आपमें जिज्ञासा होगी। आपलोग समझ नहीं सकते—ऐसा मैं नहीं मानता हूँ। आप समझनेकी चेष्टा ही नहीं करते, परवाह ही नहीं करते!

शरीर आदि मिली हुई चीजें आपके काम नहीं आयेंगी—यह बात आपको हरेक जगह मिलेगी नहीं! आपको मनुष्यशरीर मिला है, पर वह आपके काम नहीं आयेगा। आप काममें लेना चाहोगे, तब काम आयेगा। बढ़िया-से-बढ़िया चीज भी जबतक आप काममें न लें, तबतक वह क्या काम आयेगी? भगवान्‌का नाम लो, भगवान्‌का चिन्तन करो, भगवान्‌की चर्चा करो तो लाभ होगा, पर आप परवाह ही नहीं करते! आपको मनुष्यशरीर मिला है, सत्संग मिला है, अच्छी बातें मिली हैं। इनको आप ठीक तरहसे काममें लो तो बहुत लाभ होगा।

'हे नाथ! हे नाथ!' कहकर भगवान्‌को पुकारो और प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। यह बात मैंने बहुत बार कही है, पर आप ध्यान नहीं देते! रोजाना दो-दो, तीन-तीन मिनटमें कहते रहो तो देखो, आपका जीवन बदलता है कि नहीं! इसमें क्या कठिनता है? मन न लगे तो भी केवल कहनेमात्रसे लाभ होगा। लगनसे कहो तो बहुत लाभ होगा। **आजसे ही मन-ही-मन 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं' कहना शुरू कर दो। आपका जीवन विचित्र हो जायगा! आप सन्त हो जाओगे!**

*** *** ***

श्रोता—घरमें सूतक-पातक हो जाय तो भगवान्‌का पूजन कैसे करें?

स्वामीजी—अगर ठाकुरजीकी प्राण-प्रतिष्ठा की गयी है तो उनका पूजन ब्राह्मणसे कराना चाहिये। आपकी विवाहित बहन-बेटी भी उनका पूजन कर सकती है। अगर प्राण-प्रतिष्ठा नहीं करायी है तो ठाकुरजी घरके सदस्यकी तरह ही हैं। अतः उनको सूतक-पातक नहीं लगता। उनका पूजन आप कर सकते हैं।

संसारकी कोई चीज ऐसी है ही नहीं, जो सदा आपके साथमें रहे और भगवान् ऐसे हैं ही नहीं, जो सदा आपके साथमें न रहें। भगवान् सबके हृदयमें रहते हैं—'**सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः**'

(गीता १५। १५)। जैसे गायको घी दिया जाय तो वह घी गुण करता है, पर उसके भीतर रहनेवाला घी गुण नहीं करता, उसके काम नहीं आता। ऐसे ही आपके हृदयमें रहनेवाले भगवान् आपके काम नहीं आते। आपके हृदयमें रहते हुए भी वे नहींकी तरह ही हैं। आप मान लो, स्वीकार कर लो कि भगवान् हमारे हृदयमें हैं और वे हमारे हैं, तब वे काम आयेंगे।

विचार करें, भगवान्‌के बिना आप आये ही कहाँसे? कोई बालक माँके बिना आता है क्या? इसलिये आप केवल इतना स्वीकार कर लो कि भगवान् मेरे हैं, मैं भगवान्‌का हूँ। उनको हरेक हालतमें पुकारो। सुखमें भी पुकारो, दुःखमें भी पुकारो। पापी-पुण्यात्मा, भक्त-अभक्त, ज्ञानी-अज्ञानी सब भगवान्‌को अपना कह सकते हैं। भगवान्‌को अपना मान लो तो कुछ काम बाकी नहीं रहेगा, सब काम अपने-आप ठीक हो जायगा। **आपसे कोई पूछे, कभी पूछे कि कहाँके हो? कौन हो? तो स्वतः मनमें आना चाहिये कि मैं भगवान्‌का हूँ। यह बात हरेकके सामने नहीं कहनी है, पर मनमें यही बात पैदा होनी चाहिये कि मैं भगवान्‌का हूँ।**

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌में लगन नहीं लगती!

स्वामीजी—लगन नहीं लगती—इस बातका दुःख होना चाहिये। भूख नहीं लगती तो भूखकी भूख तो लगनी चाहिये। केवल विचार करें कि मेरी लगन कैसे लगे, तो लगन लग जायगी। दो-दो, चार-चार मिनटमें विचार करो। पर इसकी परवाह ही नहीं है, फिर लगन कैसे लगे? मेरी लगन लग जाय—इसकी लगन लग जाय तो जरूर लगन लग जायगी।

काम, क्रोध आदि दोष कैसे दूर हों? और भगवान्‌में प्रेम कैसे हो?—ये दोनों बातें मैं कहता हूँ। **जिसके होनेका दुःख हो जाय, वह दूर हो जायगा और जिसके न होनेका दुःख हो, वह होने लग जायगा।** यह मेरी देखी हुई बात है! वर्षोंतक मेरे मनमें रही कि यह कैसे दूर हो? चालीस-पचास वर्ष बीत गये, दूर नहीं हुआ! पर अन्तमें भगवान्‌की कृपासे दूर हो गया! इससे ज्यादा और मैं क्या कहूँ? अगर ढिलाई न हो, जोरदार दुःख हो जाय तो एक दिनमें दूर हो सकता है। यह सबके लिये बड़ी मार्मिक बात है!

श्रोता—जब शरीरमें तकलीफ होती है, तब भगवान्‌की याद नहीं रहती। उस समय भगवान्‌की याद कैसे रहे?

स्वामीजी—ध्यान देना, तकलीफसे जो फायदा होता है, वह सुखसे होता ही नहीं। **प्रतिकूलतासे जो फायदा होता है, वह अनुकूलतासे होता ही नहीं, यह नियम है।** दुःखसे जरूर फायदा होता है। पुराने पाप कटते हैं और नयी उन्नति होती है। दुःखसे नुकसान होता ही नहीं।

श्रोता—एक बार भगवान्‌का अनुभव हो गया। अब दुबारा भगवान्‌का अनुभव नहीं होता है, क्या कारण है?

स्वामीजी—अनुभव हुआ नहीं है! अनुभव एक ही बार होता है। एक बार अनुभव होनेपर दुबारा अनुभव होनेकी जरूरत ही नहीं है।

श्रोता—अभिमानशून्य अहंकार क्या है?

स्वामीजी—अभिमानशून्य अहंकार केवल व्यवहारके लिये है। जैसे नाटकमें हरिश्चन्द्र बना हुआ आदमी कहता है कि 'मैं हरिश्चन्द्र हूँ' तो यह अभिमानशून्य अहंकार है। अभिमानशून्य अहंकारके बिना वह हरिश्चन्द्रका स्वाँग कैसे करेगा?

*** *** ***

खास बात यह है कि आपको अपनी स्थितिसे सन्तोष न हो। अपनी स्थितिमें सन्तोष न होना, व्याकुलता होना बहुत बढ़िया चीज है। परमात्मा कैसे हैं—यह निर्णय करनेकी जरूरत नहीं है। **परमात्मा हैं—इतना ही जाननेकी आवश्यकता है। इसीमें आपकी दृढ़ता होनी चाहिये। वे कहाँ हैं, क्या करते हैं, कैसे हैं, सगुण हैं कि निर्गुण हैं, साकार हैं कि निराकार हैं—इन बातोंको जाननेकी जरूरत नहीं है।** परमात्माको कोई जान सकता ही नहीं। परमात्माकी प्राप्तिमें बुद्धिमानीकी जरूरत नहीं है। व्याकुलता होनी चाहिये। रात-दिन भगवान्‌को 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो कि 'महाराज! मैं आपके पास आना चाहता हूँ। मुझे यहाँ सन्तोष नहीं है!' संसारमें (धन-सम्पत्ति, मान-बड़ाई, आदर-सत्कार आदिसे) सन्तोष न हो—यह बहुत बढ़िया बात है।

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने।
त्रिषु चैव न कर्तव्यः स्वाध्याये जपदानयोः॥

(चाणक्यनीतिदर्पण ७। ४)

'अपनी स्त्री, भोजन और धन—इन तीनोंमें तो सन्तोष करना चाहिये, पर स्वाध्याय, जप और दान—इन तीनोंमें कभी सन्तोष नहीं करना चाहिये।'

सांसारिक वस्तुओंमें तो प्रारब्ध काम करता है, पर भगवान्‌के विषयमें प्रारब्ध काम नहीं करता, प्रत्युत भीतरकी लगन, व्याकुलता काम करती है।

*** *** ***

श्रोता—जब कीर्तन, माला-जप करते हैं, तब तो भगवान् याद आते हैं, पर दूसरे काममें लग जाते हैं तो भगवान्‌को भूल जाते हैं, क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—भीतरकी लगन नहीं है। भीतरमें लगन न हो तो बाहरसे किया साधन काम नहीं देता। भीतरसे भगवान्‌की भूख होनेपर ही भगवान् याद आते हैं। इसलिये विचारपूर्वक भीतरकी लगन लगाओ। विचार करो कि हमारा समय किसमें लग रहा है? **आप उपाय पूछते हो, पर वास्तवमें उपाय काम नहीं देते, भीतरकी लगन काम देती है।** भीतरकी चाहना आप बार-बार विचार करके जाग्रत् कर सकते हो। दिनभर विचार करो कि मन कैसे लगे.....मन कैसे लगे? जरूर लग जायगा। कारण कि भगवान्‌की प्राप्तिके लिये ही मनुष्यजन्म मिला है। वह काम नहीं होगा तो और क्या होगा? मन कैसे लगे.....मन कैसे लगे—यह प्रश्न ही इसका उत्तर है।

श्रोता—चार-पाँच सालसे बार-बार बाधा पड़ रही है, क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—आप तो करते रहो, छोड़ो मत। एक श्लोक आता है—

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति॥

(मुद्राराक्षस २। १७)

'नीच मनुष्य विघ्नोंके डरसे कार्यका आरम्भ ही नहीं करते हैं। मध्यम श्रेणीके मनुष्य कार्यका आरम्भ तो कर देते हैं, पर विघ्न आनेपर उसे छोड़ देते हैं। परन्तु उत्तम गुणोंवाले मनुष्य बार-बार विघ्न आनेपर भी अपना कार्य छोड़ते नहीं।'

आजकल अच्छा संग, सत्संग नहीं मिलता। कथा करनेवाले, व्याख्यान देनेवाले भी वह बात

कहते हैं, जिससे लोग ज्यादा इकट्ठे हो जायँ, लोग राजी हो जायँ और पैसा अधिक आये। लोगोंके कल्याणकी बातोंकी तरफ ख्याल ही नहीं है। सत्संगकी बात ही दुर्लभ हो गयी है। आध्यात्मिक बातें जानते ही नहीं, जानना चाहते ही नहीं। आजकल अच्छा सत्संग मिलना बहुत दुर्लभ हो गया है! पहले आध्यात्मिक पत्रोंमें जैसे लेख आते थे, वैसे लेख अब नहीं आते। अच्छे लेखक, विद्वान्, अनुभवी आदमी संसारमात्रमें बहुत कम रह गये हैं। साधु बहुत कम रह गये, और साधुओंमें भी साधुता बहुत कम रह गयी है! हमारा क्या कर्तव्य है, हमें क्या करना चाहिये—ऐसा विचार करनेवाले बहुत कम रह गये! सत्संगमें आनेवाले भाई-बहनोंमें भी अच्छे विचारवाले बहुत कम हो गये हैं! आप खुद पक्का विचार कर लो कि हमें ठीक बनना है तो जरूर ठीक बन सकते हो। दूसरा आपको ठीक नहीं बना सकता।

सत्संगका बड़ा असर पड़ता है। सत्संग सुने तो मूर्खता नहीं रह सकती।

मति कीरति गति भूति भलाई । जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ । लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥

(मानस, बाल० ३। ३)

'संसारमें जिसने जिस समय जहाँ-कहीं भी जिस-किसी यत्नसे बुद्धि, कीर्ति, सद्गति, विभूति (ऐश्वर्य) और भलाई पायी है, वह सब सत्संगका ही प्रभाव समझना चाहिये। वेदोंमें और लोकमें इनकी प्राप्तिका दूसरा कोई उपाय नहीं है।'

मूर्खता इसी कारण रहती है कि अच्छे सन्त-महात्माओंका सत्संग नहीं मिला।

सम्पूर्ण जीव साक्षात् परमात्माके अंश हैं—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'*** (मानस, उत्तर० ११७। १)। अतः हरेकके भीतर यह बात होनी चाहिये कि हम भगवान्‌के लाड़ले बेटा-बेटी हैं। **आप अपने-आपको भगवान्‌का अंश मानोगे तो बिना कहे-सुने आपमें अच्छे गुण, सद्गुण-सदाचार अपने-आप आ जायँगे। ऐसी-ऐसी बातें आपमें आ जायँगी कि खुद आपको आश्चर्य होगा!** परन्तु यह होगा भगवान्‌के साथ अपना सम्बन्ध माननेसे। हम भगवान्‌के हैं—यह सब बातोंकी सार बात है।

*** *** ***

श्रोता—अगर विधवा विवाह न करे तो उसका जीवन कैसे चलेगा?

स्वामीजी—मनुष्यजन्मके खास ध्येय परमात्माकी प्राप्तिको तो सर्वथा भूल गये और भोगेच्छा मुख्य हो गयी! **अगर परमात्मप्राप्तिका लक्ष्य हो जाय तो जीवन बहुत बढ़िया चलेगा।** शरीर भोग भोगनेके लिये ही है—यह बात भीतर बैठी हुई होनेके कारण यह प्रश्न उठता है कि जीवन कैसे चलेगा? अगर त्यागका विचार होता तो यह प्रश्न ही नहीं उठता। भोगेच्छा ही मुख्य हो जायगी तो फिर दुराचार, पापाचार ही होंगे।

अगर यह प्रश्न है कि विधवाका निर्वाह कैसे होगा, तो यह प्रश्न भी उठना चाहिये कि जो साधु हो गया, उसका निर्वाह कैसे होगा!

*** *** ***

श्रोता—सम्पूर्ण सृष्टि भगवान्‌से पैदा हुई है, तो जो कुछ हो रहा है, सब भगवान् ही करवा रहे हैं। फिर हम जो गलती करते हैं, उसका फल हमें क्यों मिलता है?

स्वामीजी—यह बात नहीं है। आप अपने मनसे काम करते हैं। आपको प्यास लगती है तो आप जल पीते हैं, भूख लगती है तो अन्न खाते हैं, नींद आती है तो सो जाते हैं। जो आपके

मनमें आता है, वह काम आप करते हैं।

एक 'करना' होता है और एक 'होना' होता है। दोनों अलग-अलग हैं। जैसे, व्यापार करते हैं, नफा-नुकसान होता है। 'करना' हमारे हाथमें है, 'होना' हमारे हाथमें नहीं है। अगर होना हमारे हाथमें होता तो हम नुकसान करें ही नहीं, हम कभी मरें ही नहीं। कोई मरना नहीं चाहता, पर सब मरते हैं! इसलिये करनेमें सावधान और होनेमें प्रसन्न रहनेकी बात कही जाती है। करनेमें सावधान नहीं रहना और होनेमें दुःखी होना—दोनों ही गलती है।

भगवान् कराते हैं—यह बात है ही नहीं। अगर भगवान् कराते तो 'ऐसा करो, ऐसा मत करो'—यह कहना बनेगा ही नहीं। गुरु, शास्त्र आदि सब निरर्थक हो जायँगे।

श्रोता—अपने-आप भजन कैसे हो?

स्वामीजी—लगन होनेसे अपने-आप भजन होगा। सच्ची लगन होनेसे भजन छूट ही नहीं सकता। भीतरमें यह बात जँच जाय कि एक भगवान्‌के सिवाय अपना कोई नहीं है तो अपने-आप, स्वाभाविक भजन होगा। संसार (स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, धन आदि)-को अपना मानोगे तो संसारका भजन होगा, भगवान्‌का भजन कैसे होगा? संसारमें अपना कोई नहीं है—इतना मान लो तो अपने-आप भजन होगा।

*** *** ***

श्रोता—कोई ऐसा उपाय बतायें कि सुख भी भोगते रहें और भजन भी हो जाय!

स्वामीजी—ये दो बातें एक साथ चलेंगी नहीं। **सुखभोगकी रुचि रहते हुए परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती।** परमात्मप्राप्तिमें बाधा ही यही है, और बाधा ही क्या है? आप सुखभोगकी रुचि हटाते नहीं, परमात्माकी प्राप्ति होती नहीं। दोनोंमेंसे एक ही बात होगी।

कबीर मनुआँ एक है, भावे जिधर लगाय।
भावे हरि की भगति करे, भावे विषय कमाय॥

दोनों काम करोगे तो जीवन चलता रहेगा, शुभ काम भी होंगे, पर अशुभ कामसे सर्वथा छुटकारा नहीं होगा। जिसके भीतर भोगोंकी इच्छा रहती है, उसको खतरा रहता है। जहाँ झूठ, कपट, बेईमानीसे रुपया, भोग मिलता हुआ दीखेगा, वह झूठ, कपट, बेईमानी कर लेगा। गीतामें अर्जुनने प्रश्न किया है कि मनुष्य न चाहता हुआ भी पाप क्यों करता है? भगवान्‌ने यही उत्तर दिया है कि भोगोंकी कामनाके वशीभूत होनेसे वह पाप करता है (गीता ३। ३६-३७)। तात्पर्य है कि भोगोंमें रुचि रहनेके कारण मनुष्य पापमें रुचि न होनेपर भी पाप कर बैठता है।

भोगोंमें रुचि होगी तो मन भोगोंकी तरफ जायगा, साधनकी तरफ नहीं। उससे भजन होगा ही नहीं। भोगोंकी रुचि तंग करती रहेगी। इसलिये पहलेसे ही यह बात होनी चाहिये कि हमारा उद्देश्य भोगोंका नहीं है, हमें तो परमात्माको ही प्राप्त करना है।

भोगोंकी प्राप्ति चाहना पतनका रास्ता है और परमात्माकी प्राप्ति चाहना उत्थानका रास्ता है। दोनों रास्ते अलग-अलग हैं। अगर परमात्माकी प्राप्ति चाहते हो तो भोगोंकी इच्छाको मिटाओ। कम-से-कम, कम-से-कम, कम-से-कम इतना भाव तो होना ही चाहिये कि हमें भोगोंकी इच्छाको मिटाना है। भोग और संग्रहमें लगा हुआ मनुष्य 'मुझे परमात्माकी प्राप्ति करनी है'—यह निश्चय भी नहीं कर सकता! जिनका उद्देश्य परमात्मप्राप्तिका है, उनको भी सुखभोगकी इच्छा ही बाधा देती है।

भोग रागपूर्वक ही भोगे जाते हैं। रागके बिना भोग नहीं भोगे जाते। फिर रागके रहते हुए परमात्मामें

अनुराग कैसे होगा?

अगर भोगोंकी इच्छा सर्वथा मिट जाय तो साधक नहीं रहेगा, सिद्ध हो जायगा। साधक तभीतक है, जबतक भोगोंकी इच्छा है। भगवान्‌की इच्छा मुख्य होगी तो साधन करनेसे जरूर लाभ होगा। वह ज्यों-ज्यों साधन करेगा, त्यों-त्यों उसको पहलेकी अपेक्षा भोगोंका त्याग करनेमें सुगमता मालूम होगी। इसमें सबसे बढ़िया चीज सत्संग है।

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि
श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति॥

(श्रीमद्भा० ३। २५। २५)

'संतोंके संगसे मेरे पराक्रमोंका यथार्थ ज्ञान करानेवाली तथा हृदय और कानोंको प्रिय लगनेवाली कथाएँ होती हैं। उनका सेवन करनेसे शीघ्र ही मोक्षमार्गमें श्रद्धा, प्रेम और भक्तिका क्रमशः विकास होगा।'

सत्संगमें जो रस आता है, उस रसमें भजनको तीव्र बनानेकी विलक्षण शक्ति है। परन्तु ऐसा सत्संग मिलना बड़ा दुर्लभ है।

तात मिलै पुनि मात मिलै सुत, भ्रात मिलै युवती सुखदाई।
राज मिलै गज-बाजि मिलै सब, साज मिलै मनवांछित पाई॥
लोक मिलै सुरलोक मिलै, बिधिलोक मिलै बैकुंठहु जाई।
'सुन्दर' और मिलै सब ही सुख, संत समागम दुर्लभ भाई॥

(सुन्दरविलास २९। १२)

सन्तोंका संग मिलना बड़ा दुर्लभ है! असली सन्तोंका संग मिल जाय तो पापी-से-पापीका भी उद्धार हो जाता है! ऐसे कई उदाहरण भी मिलते हैं।

*** *** ***

श्रोता—कहते हैं कि अहम्‌की सत्ता नहीं है। जब अहम्‌की सत्ता ही नहीं है तो फिर जन्म-मरण क्यों होता है?

स्वामीजी—अहम् और जन्म-मरण दोनों एक ही जातिके हैं। जैसे अहम्‌की सत्ता नहीं है, ऐसे ही जन्म-मरणकी भी सत्ता नहीं है। आपने ही अहम्‌के साथ-साथ जन्म-मरणकी सत्ता मान रखी है। जैसे, स्वप्नमें कोई सिर काटे तो जागे बिना वह दुःख दूर नहीं होता। स्वप्नमें वह प्रत्यक्षकी तरह ही सच्चा मालूम देता है। जागनेपर ही मालूम होता है कि सब झूठ है। ऐसे ही जन्म-मरण एक स्वप्न है।

अहम् चीज एक कल्पना है। आप अहम्‌को मत मानो। 'मैं हूँ'—ऐसा एक मनुष्य है। मनुष्य मानकर मनुष्यके कर्तव्यका पालन करो।

जिस धातुका अहम् है, उसी धातुका जन्म है, उसी धातुका मरण है। आप अहम्, जन्म और मरण—तीनोंको सच्चा मानकर भी साधन कर सकते हैं। यह आग्रह नहीं रहना चाहिये कि इनको असत् मानकर ही हम साधन करें। अगर ये सच्चे दीखते हों तो स्वार्थ और अभिमानका त्याग करके दूसरोंको सुख पहुँचाना, दूसरोंकी सेवा करना शुरू कर दो। **जन्म-मरणको झूठा माननेसे ही कल्याण**

होगा, ऐसी बात नहीं है। यह केवल एक शास्त्रकी बात है। जन्म-मरणको सच्चा माननेपर भी आपका कल्याण हो जायगा, आप घबराओ मत। संसारको सच्चा माननेवालोंके लिये ही कर्मयोग है। अगर दूसरोंके सुखके लिये आपको कष्ट पाना पड़े तो वह कष्ट आपकी तपस्या हो जायगी।

संसारसे सुख लेनेकी इच्छा ही बाँधनेवाली है। आप संसारको सच्चा मानो या झूठा मानो, सुखकी इच्छाका त्याग तो करना ही पड़ेगा। इसका त्याग किये बिना कल्याण नहीं होगा। संसारको सच्चा मानते हुए भी यह भाव रखो कि सब सुखी हो जायँ, किसीको किंचिन्मात्र भी दुःख न हो। दूसरेके सुखके लिये दुःखको स्वीकार कर लो। सुखभोगको स्वीकार करना दोषी है।

संसारको असत् माननेसे ही कल्याण होगा—यह कायदा नहीं है। सिनेमाको असत् माननेपर भी उसमें आसक्ति हो जाती है। सिनेमामें दीखनेवाला सच्चा नहीं है—ऐसा निर्णय पक्का है, फिर भी देखनेकी रुचि होती है। अतः अपनी स्वार्थबुद्धि, भोगबुद्धि, आरामबुद्धि बाधक है। संसार सच्चा दीखे तो इसका दुःख मत करो। दूसरोंको सुख पहुँचाओ, सेवा करो। हमारे द्वारा भूलमें भी किसीको कष्ट न पहुँचे—ऐसा उद्देश्य रखो। **संसार बाधक नहीं है, उसका सम्बन्ध बाधक है।** संसार सच्चा हो या झूठा हो, उससे हमें क्या मतलब?

जो व्याख्यान देते हैं, वे सम्बन्ध जोड़ लेते हैं कि ये हमारे चेला-चेली हैं, हमारे सत्संगी हैं, तो खेती, व्यापार करनेकी तरह व्याख्यान देना भी एक काम हुआ! जहाँ सम्बन्ध जोड़ा कि बँधे! हृदयसे अपने सम्बन्धका त्याग होना चाहिये। **संसारको झूठा माननेमात्रसे कल्याण नहीं होता। कल्याण संसारके सम्बन्धका त्याग करनेसे होता है।** सम्बन्धमें भी सुखबुद्धि बाधक है। संसारका सम्बन्ध केवल सुख पहुँचानेके लिये है, सुख लेनेके लिये नहीं।

संसारका सम्बन्ध रखते हुए भले ही संसारको झूठा कहते रहो, कोई फायदा नहीं है। जड़तासे कुछ लेना चाहते हैं, यह दोष है; जड़ताका दोष नहीं है। जिसका संयोग और वियोग होता है, जो मिलती और बिछुड़ती है, वह चीज अपनी नहीं है—केवल इतना माननेमात्रसे बहुत लाभ होगा। पहलेसे ही पक्का विचार कर लें कि जो मिला है, उसका वियोग होगा। वियोगको मुख्य मानें। **संसारमात्रमें वियोग ही मुख्य है, संयोग मुख्य नहीं है।** जो संयोगका सुख भोगते हैं, उनको वियोगका दुःख भोगना पड़ेगा ही, किसी तरहसे बच नहीं सकते!

*** *** ***

संसारका सम्बन्ध पतन करनेवाला और भगवान्‌का सम्बन्ध उद्धार करनेवाला है—यह छोटी-सी बात है, पर बहुत दामी है! संसार पतन करनेवाला नहीं है, प्रत्युत उसका सम्बन्ध पतन करनेवाला है। सम्बन्ध सदा रहता है। जिससे हम अपना सम्बन्ध मान लेते हैं, उसको याद न करनेपर भी उसकी याद सदा बनी रहती है।

नहीं रट्या तो का भया, घट्या न चाहिय हेत।
जैसे नार सुहागणी, पिव को नाम न लेत॥

इसलिये अपना सम्बन्ध भगवान्‌के साथ रखो। संसारका काम करो, पर सम्बन्ध मत जोड़ो। एक शिवजीका भक्त था। वह वैष्णवोंके यहाँ भोजन करने गया तो उसके माथेपर आड़ा त्रिपुण्ड्र तिलक देखकर उसको उठा दिया, भोजन नहीं करने दिया। शैवोंमें आड़ा त्रिपुण्ड्र और वैष्णवोंमें खड़ा त्रिपुण्ड्र तिलक किया जाता है। उस शिवभक्तने पेटके ऊपर खड़ा त्रिपुण्ड्रका तिलक कर लिया और भोजनके लिये बैठ गया। वह बोला कि मस्तकपर तो हमारे इष्टका ही तिलक रहेगा, वह तो हट नहीं सकता,

पर भूख लगी है, इसलिये भोजनके लिये पेटपर तिलक कर लिया। पेटको देखो तो हम वैष्णव हैं! इस प्रकार व्यवहारके लिये तो संसारसे सम्बन्ध मानो, पर भीतरसे अपना सम्बन्ध भगवान्‌से ही रखो।

*** *** ***

श्रोता—परमात्मप्राप्ति अथवा मुक्तिका क्या मतलब है? क्या जीते-जी मुक्ति, भगवान्‌की प्राप्ति, उनके दर्शन हो सकते हैं?

स्वामीजी—हाँ, हो सकते हैं। मुक्ति अथवा मोक्षका अर्थ है— छूटना। मुक्ति होनेपर मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ, पाखण्ड आदि जो संसारके बन्धन हैं, उनसे सर्वथा छूट जाता है। **ऐसी मुक्ति जीते-जी, शरीरके रहते-रहते हो सकती है। राम, कृष्ण, विष्णु आदिके दर्शन भी जीते-जी हो सकते हैं।** गोस्वामी तुलसीदासजी, सूरदासजी आदि कई सन्तोंको भगवान्‌के दर्शन हुए हैं।

आप पूछ सकते हैं कि इसमें प्रमाण क्या है? तो इसका प्रमाण आप सभी हैं। आप सत्संग करते हैं तो सत्संगसे शान्ति मिलती है कि नहीं? काम-क्रोधादि दोष कम होते हैं कि नहीं? सत्संग करनेवाले कई भाई-बहनोंसे मेरी बात हुई है, और उन्होंने कहा है कि 'उनके काम-क्रोधादि दोष कम हुए हैं। पहले जैसे दोष थे, वैसे अब नहीं रहे हैं। सत्संग करनेसे फर्क तो बहुत पड़ा है, पर दोष सर्वथा नष्ट नहीं हुए हैं।' जब फर्क पड़ा है तो सर्वथा नष्ट भी हो सकते हैं। कारण कि **यह नियम है कि जो चीज घटती है, वह मिटनेवाली होती है। जो मिटनेवाली नहीं होती, वह घटनेवाली भी नहीं होती।** सच्चे हृदयसे सत्संग करनेवालोंमें काम-क्रोधादि विकार जरूर कम होते ही हैं, यह नियम है। अगर कम नहीं हुए हैं तो असली सत्संग मिला नहीं है अथवा हमने ठीक तरहसे सत्संग किया नहीं है। आप ठीक तरहसे देखें तो आपको अपने जीवनमें परिवर्तन मालूम होगा। अगर सत्संगसे कुछ लाभ नहीं होता तो सब लोग इतने बेसमझ थोड़े ही हैं कि घरका काम-धंधा छोड़कर, यहाँ आकर अपना समय खर्च करें!

आपको विकारोंके अभावका, आने-जानेका तो अनुभव होता है, पर अपने अभावका अनुभव कभी नहीं होता। जैसे, सुषुप्तिमें सबके अभावका और अपने भावका अनुभव सबको होता है। इस प्रकार विचार करनेसे भी सिद्ध होता है कि मुक्ति होती है।

भगवान्‌के दर्शन किये हुए आदमी भी मिलते हैं। दर्शनोंके विषयमें कई मतभेद हैं। दर्शन सबको बराबर नहीं होते। दर्शन होनेपर भी कइयोंकी वृत्ति हरदम ठीक नहीं रहती, कइयोंकी वृत्ति हरदम ठीक रहती है।

मनुष्य जीते-जी मुक्त हो सकता है। मरनेके बाद मुक्ति होगी—इसका क्या पता?

श्रोता—विकार तो अन्तःकरणके धर्म हैं; अतः ये कैसे शान्त हो सकते हैं?

स्वामीजी—विकार अन्तःकरणके धर्म नहीं हैं। धर्म हरदम रहता है, जबकि विकार आते-जाते रहते हैं। यदि विकार अन्तःकरणके धर्म होते तो जबतक अन्तःकरण रहता, तबतक विकार भी रहते।

श्रोता—अपना स्वरूप निर्विकार है, तो विकारोंका प्रभाव अपने निर्विकार स्वरूपपर कहाँतक पड़ता है?

स्वामीजी—जहाँतक अन्तःकरण अशुद्ध रहता है, वहाँतक। एक बहिःकरण (दस इन्द्रियाँ) है, एक अन्तःकरण (मन, बुद्धि तथा अहंकार) है। जबतक अन्तःकरणमें अशुद्धि रहती है, तबतक उसमें विकार रहते हैं। ज्यों-ज्यों अन्तःकरण शुद्ध होता है, त्यों-त्यों उसमें निर्विकारता आती है, यह सब

साधकोंका अनुभव है।

काम, क्रोध, लोभ आदि विकार भी सबमें बराबर नहीं होते। किसीमें अधिक होते हैं, किसीमें कम। जो साधन नहीं करते, उनमें भी विकार बराबर नहीं होते। एक साधन नहीं करता, पर उसमें भी पूर्वजन्मके साधनके कारण विकार कम हो सकते हैं, और एक साधन करता है, पर उसमें विकार अधिक हो सकते हैं। परन्तु साधन करनेसे, सत्संग करनेसे फर्क जरूर पड़ता है—इसमें मुझे बिलकुल सन्देह नहीं है। जैसे भोजन करनेसे भूख शान्त होती है, जल पीनेसे प्यास शान्त होती है—यह सबका अनुभव है, ऐसे ही सत्संग करनेसे विकार कम होते हैं—यह सबका अनुभव है।

*** *** ***

श्रोता—आप भगवान्‌को याद करनेकी बात कहते हैं तो कम-से-कम हमें भगवान्‌के दर्शन करा दीजिये। बिना देखे भगवान्‌को कैसे याद करें?

स्वामीजी—आपकी बात तो ठीक है, पर खास बात यह है कि हमारेमें वह शक्ति नहीं है कि भगवान्‌के दर्शन करा दें। आप चाहो तो भगवान्‌के दर्शन हो सकते हैं। भगवान् ऐसी चीज नहीं है, जो किसीके कहनेसे आ जायँ।

आपने आजतक जैसा सुना है, जैसा पढ़ा है, जैसा आपके विचारमें आया है कि भगवान् ऐसे हैं, उसको याद रखो। उसको भगवान् अपना मान लेंगे। भगवान् सबमें हैं। आप जो भी कल्पना करेंगे, भगवान् उसके अनुरूप भी हैं, और स्वयं भी हैं। वास्तवमें यह सब स्वरूप भगवान्‌का ही है—'**वासुदेवः सर्वम्**' (गीता ७। १९)। जब सब कुछ वासुदेव ही है तो फिर जो आप याद करते हो, वह वासुदेव नहीं है क्या? भगवान् कहते हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

'जो भक्त सबमें मुझे देखता है और मुझमें सबको देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।'

भक्तोंके भावको भगवान् जानते हैं और भगवान्‌के भावको भक्त जानते हैं। भगवान् कैसे हैं, कहाँ रहते हैं, आदि बातोंको जाननेकी कोई जरूरत नहीं। 'वे हैं', बस, इतना मान लो। उनको 'है'-रूपसे मान लो। वह 'है'-रूपसे सबमें हैं। ईंट, चूना, पत्थर, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि सबमें जो 'है' दीखता है, वह भगवान्‌का वाचक है।

*** *** ***

मुक्तिके लिये कर्म नहीं करना है, प्रत्युत कर्म करनेका वेग शान्त करनेके लिये कर्म करना है। कर्म करनेसे कर्मोंसे मुक्ति नहीं होती। भगवान्‌के शरण हो जाओ तो मुक्ति हो जायगी। जो कुछ करें, केवल भगवान्‌के लिये ही करें। एक ही धुन लगा दें कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भगवान् को भूलें नहीं तो सब काम ठीक हो जायगा। जैसे, नरसीजीने भगवान्‌से कहा—***'हूँ तनै सिवरूँ, तूँ भर माहेरौ, कर लौ आटौ-साटौ'*** (मैं तुम्हारा भजन करता हूँ, तुम मेरा माहेरा भर दो, हमलोग ऐसा ही सौदा कर लें)।

पारमार्थिक मार्ग बहुत सुगम है! संसारके कामोंमें तो बहुत झंझट हैं, पर पारमार्थिक मार्गमें कोई झंझट है ही नहीं। हमें कुछ नहीं चाहिये, केवल भगवान् चाहिये। कुछ भी इच्छा नहीं करना

है, न जीनेकी, न मरनेकी। जैसे भगवान् रखें, वैसे रहना है।

सत्संगकी जितनी बातें हैं, उनमें सार बात यह है कि हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं। ऐसा कोई है ही नहीं, जो भगवान्‌का न हो। जो साधु होता है, वह अपनेको भगवान्‌का मानता है। **जो साधु अपनेको ब्राह्मण मानता है, वह असली साधु नहीं हुआ।** साधुकी जाति मानना उसका तिरस्कार है।

श्रोता—हमने अच्छी तरह विचार करके यह निर्णय किया है कि हमें भगवान्‌की आवश्यकता नहीं है।

स्वामीजी—भगवान्‌की आवश्यकता नहीं है तो फिर पूछनेकी जरूरत ही नहीं। खाओ-पीओ, मौज करो! बिना सींगके पशु तरह ही हैं! सींगके बिना पशु भद्दा होता है! पर यह याद रखो कि भगवान्‌को माने बिना शान्ति कभी नहीं मिलेगी। तरह-तरहका रंग-रंगीला दुःख आयेगा! दुःख पाते ही रहोगे, कभी अन्त नहीं आयेगा।

एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं
गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य।
तावद् द्वितीयं समुपस्थितं मे
छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति॥

(पञ्चतन्त्र, मित्रसम्प्राप्ति १८६)

'समुद्रको पार करनेकी तरह जबतक एक दुःखका पार (अन्त) नहीं आता, तबतक दूसरा दुःख आ धमकता है; ठीक ही है, अभावमें अनर्थोंकी बहुलता होती है।'

एक कॉलेजमें मैं गया। वहाँ सब शिक्षक सुनने आये थे। एकने कहा कि भगवान् कोई है ही नहीं। वह अपनी बात बोलकर बैठ गया। मैं कुछ बोला नहीं तो उसने कहा कि आप बोलो। मैंने कहा कि तुमने निर्णय कर लिया, अब मैं क्यों बोलूँ? बिना बोले मुझे खुजली आती है क्या? हमारे भगवान् इतने घटिया नहीं हैं कि उन्हें माननेके लिये तुम्हें कहना पड़े। तुम तुम्हारी मानो, हम हमारी मानेंगे। तुम हमारी मानोगे नहीं, हम तुम्हारी मानेंगे नहीं। फिर निरर्थक समय बरबाद क्यों करें? तुम्हें हमारी जरूरत नहीं, हमें तुम्हारी जरूरत नहीं! हम भी मस्त, तुम भी मस्त!

कोई हाल मस्त कोई माल मस्त कोई तूती मैना सूवे में।
कोई खान मस्त पहिरान मस्त कोई राग रागिणी धूवे में॥
कोई अमल मस्त कोई रमल मस्त कोई शतरंज चौपड़ जूवे में।
एक खुद-मस्ती बिन और मस्त सब पड़े अविद्या कूवे में॥

शरणानन्दजी कहते थे कि मैं भगवान्‌का प्रचारक नहीं हूँ। हमारे भगवान् कमजोर नहीं हैं जो हम उनका प्रचार करें।

श्रोता—जैसे नरसीके अन्दर भगवान्‌की भक्तिका भाव जाग्रत् हुआ, ऐसे हम भी चाहते हैं, लेकिन हमारे मनमें होता नहीं, क्या बात है?

स्वामीजी—आप चाहते ही नहीं। चाहते तो जरूर होता।

*** *** ***

श्रोता—आप अपनी फोटोके लिये मना क्यों करते हैं? जब आप नहीं रहेंगे, तब हम आपकी फोटो देखकर आपको याद करेंगे। जैसे, भगवान्‌की फोटो होती है तो भगवान्‌को याद करते हैं, पूजा

करते हैं। आगे आनेवाली पीढ़ी भी देखेगी कि ऐसे महाराजजी थे!

स्वामीजी—हम ऐसे पूजा करवाना चाहते नहीं। हम इसके योग्य नहीं हैं। हम चाहते हैं कि भगवान्‌की ही फोटो हो और भगवान्‌का ही पूजन हो, मनुष्यका पूजन न हो। अपनी फोटो लगानेसे भगवान्‌के चिन्तनमें बाधा लगेगी, विघ्न पड़ेगा। हम जितनी फोटुएँ लगायेंगे, उतनी भगवान्‌की फोटुएँ कम लगेंगी तो हानि ही होगी! हम अपनी तरफसे भगवान्‌की यादमें बाधा देना नहीं चाहते। भगवान्‌को याद करनेकी जैसी जरूरत है, वैसी हमें याद करनेकी जरूरत नहीं है....नहीं है....नहीं है! मनुष्यका कल्याण जैसे भगवान्‌को याद करनेसे होगा, वैसे हमें याद करनेसे नहीं होगा। क्या हम भगवान्‌के समकक्ष हैं जो भगवान्‌की फोटोकी जगह अपनी फोटो लगवायें?

अपनी फोटोका प्रचार करनेको मैंने अच्छा नहीं माना है। आप मेरी मान्यताको आदर दोगे या फोटोको आदर दोगे?

श्रोता—हमारी भगवान्‌में आस्था भी है, चलते-फिरते नाम भी लेते हैं, लेकिन सन्ध्या करते हैं या ध्यान करते हैं तो बीच-बीचमें भगवान्‌का स्वरूप अटक-भटक जाता है। क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भाई-बहन ध्यान दें, ये जितने प्रश्न पूछे जाते हैं, उनमें आप उपाय पूछते हो। पर वास्तवमें ऊपरका उपाय काम नहीं करता, प्रत्युत भीतरकी चाहना काम करती है। भगवान् आपके भीतरकी लालसाको जानते हैं। आपकी लालसा होगी तो जरूर फायदा होगा, इसमें सन्देह नहीं है। ऊपरके उपायोंसे अथवा नकली उपायोंसे काम नहीं चलेगा। भीतरसे असली लगन लगाओ।

आप भीतरसे संसारको चाहते हैं कि भगवान्‌को चाहते हैं? आपको संसार (स्त्री, पुत्र, रुपये आदि) प्यारा लगता है कि भगवान् प्यारे लगते हैं? आपको स्वतः-स्वाभाविक संसारकी याद आती है कि भगवान्‌की याद आती है? आपको रुपयोंकी आवश्यकता है कि भगवान्‌की आवश्यकता है? इन बातोंपर आप विचार करो। **आप भगवान्‌का चिन्तन करते हैं और संसारका चिन्तन होता है। जो 'करते' हैं, वह नकली है और जो 'होता' है, वह असली है।** असली बात भगवान्‌की होनी चाहिये, संसारकी नहीं। भीतरमें भगवान्‌की लालसा है तो भगवान्‌का चिन्तन जरूर होगा। अगर भीतरमें संसारकी लालसा है तो भले ही भगवान्‌का चिन्तन करो, होगा संसारका ही चिन्तन।

*** *** ***

श्रोता—आप कहते हैं कि शरीर हमारे काम नहीं आता, पर रामायणमें कहा है—***'तन बिनु बेद भजन नहिं बरना'*** (मानस, उत्तर० ९६। ३)।

स्वामीजी—ठीक कहा है; क्योंकि मनुष्य जप करेगा तो जबानसे ही करेगा। बिना शरीरके जप कैसे करेगा? परन्तु शरीरके द्वारा हम परमात्माकी प्राप्ति कर लेंगे—यह बात नहीं है। स्थूल क्रियासे परमात्मप्राप्ति नहीं होती। राम-नामका टेप (कैसेट या सी.डी.) लगा दो तो क्या परमात्मप्राप्ति हो जायगी? अतः परमात्माकी प्राप्ति जड़ क्रियासे नहीं होती, प्रत्युत भीतरके भावसे होती है।

नामजप उपासना है, क्रिया नहीं। क्रिया, उपासना और विवेक—ये तीनों उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। क्रिया और पदार्थ परमात्मासे दूर हैं। उपासना परमात्माके नजदीक है, और उसकी अपेक्षा विवेक नजदीक है। क्रिया और पदार्थका भरोसा परमात्मामें भरोसा नहीं होने देगा। क्रिया और पदार्थमें सन्तोष होगा तो परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी। भावके सहित जो क्रिया होती है, वह उपासना होती है। उससे भी विवेक तेज है। विवेक ही बोधमें परिणत होता है। **क्रिया और पदार्थके द्वारा परमात्मप्राप्ति नहीं**

होती—यह ज्ञान होना भगवान्‌का वरदान है, कृपा है!

प्रार्थना भी शरीरसे होती है, पर यह उपासना है। प्रार्थनाका सम्बन्ध साक्षात् परमात्माके साथ है। 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'—यह बहुत बढ़िया प्रार्थना है। यह करण-निरपेक्ष है; क्योंकि यह स्वयंकी पुकार है। इसमें मनकी मुख्यता नहीं है, प्रत्युत स्वयंकी मुख्यता है। परमात्मामें मन लगाना, ध्यान करना करण-सापेक्ष है। करण-सापेक्ष साधनमें ही साधक योगभ्रष्ट होता है। ध्यानसे भी कर्मयोग श्रेष्ठ है—'**ध्यानात्कर्मफलत्यागः**' (गीता १२। १२)। 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!'—इसमें भावकी मुख्यता है, क्रियाकी नहीं।

कर्मयोगसे शान्ति मिलती है, जिससे ब्राह्मी स्थिति होती है। ज्ञानयोगसे परमात्माकी प्राप्ति होती है। भक्तियोगसे परमात्मा वशमें हो जाते हैं! भक्त भगवान्‌के परायण होता है तो भगवान् भी भक्तके परायण हो जाते हैं।

*** *** ***

आजकल लोग कई तरहकी उलझनोंमें उलझे हुए हैं! कई नवयुवक ऋषिकेशमें आ जाते हैं और कहते हैं कि हम तो माँ-बापको बिना बताये आ गये! माँ-बाप तो स्वार्थी हैं। हम तो पारमार्थिक मार्गपर चलना चाहते हैं। वास्तवमें यह परमार्थ नहीं है। सिरपर तो कर्जा है, पर दान कर रहे हैं! **जिन माँ-बापसे मनुष्यजन्म पाया है, उनकी तो सेवा करते नहीं, पर दुनियाकी सेवा करते हो—यह पाप है पाप!** पुण्य नहीं है यह। माँ-बापसे आपने शरीर लिया है, दूध पिया है, अन्न-जल लिया है, शिक्षा ली है, उनको नाराज करके दुनियाका भला करते हो—यह क्या आपका कर्तव्य है? ऐसे कई नवयुवकोंको रोककर हमने उनके घरवालोंको समाचार दिया है। वे अपनेको स्वयंसेवक कहते हैं तो वास्तवमें वे दूसरोंके सेवक नहीं हैं, प्रत्युत स्वयंसेवक अर्थात् अपने ही सेवक हैं; क्योंकि बाहर जाकर सेवा करनेसे वाह-वाह (महिमा) होती है, घरमें वाह-वाह नहीं होती! वास्तवमें उनका सेवा करनेका शौक नहीं है, प्रत्युत अपनी महिमा करवानेका शौक है।

घरवालोंकी सेवा करना एक नम्बर है, बाहरकी सेवा करना दो नम्बर है। इसलिये कम-से-कम पहले कर्जा उतारो! जिन्होंने शरीर दिया है, शिक्षा दी है, खर्चा किया है, उनको न मानकर बाहर जाकर सेवा करते हैं—यह बिलकुल अन्याय है! घरमें माँ-बाप बीमार हैं और चले हैं दुनियाकी सेवा करने! इसलिये पहले घरवालोंकी सेवा करके कर्जा उतारो, पीछे उपकार करो। उनकी आज्ञा लेकर बाहर जाओ। ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जिनमें लोग उलझे हुए हैं!

*** *** ***

श्रोता—परमात्माकी प्राप्तिके लिये जप, तप, भजन आदि करनेकी बात कही जाती है, पर रामचरितमानसमें यह बात आयी है कि जो रामेश्वरम्‌में गंगाजल चढ़ा देंगे, उनको सायुज्य मिल जायगा, तो फिर हम रामेश्वरम् जाकर गंगाजल चढ़ा देंगे, उतनेसे हमारा कल्याण हो जायगा, बाकी अड़ंगा हम करें ही क्यों?

स्वामीजी—बिलकुल झूठी बात है! यह बात उनके लिये है, जो सब काम न्याययुक्त करते हैं। आपका जीवन, आपके आचरण अच्छे नहीं हैं तो कल्याण कैसे हो जायगा?

ऐरण की चोरी करै, करै सुई को दान।
ऊपर चढ़ देखण लग्यो, कद आसी बीमान॥

एक वेश्या थी। उसने कहीं कथामें सुन लिया कि अगर सोमवती अमावस्याके दिन ब्राह्मणको

भोजन कराकर दक्षिणा दी जाय तो पाप कट जाते हैं और दाताको स्वर्गकी प्राप्ति होती है, उसे लेनेके लिये स्वर्गसे विमान आता है। वह ब्राह्मणके पास गयी और कहा कि हमारे घर भोजन करो। ब्राह्मणने पूछा कि तू कौन है? वह बोली कि मैं वेश्या हूँ। ब्राह्मणने मना कर दिया कि हम वेश्याका अन्न नहीं खाते। रास्तेमें एक भाँड़ ब्राह्मणका रूप बनाकर आ रहा था। वेश्याने उसको देखा तो पूछा कि तुम कौन हो? वह बोला कि मैं पाण्डेय हूँ; तुम कौन हो? वेश्या बोली कि मैं खत्राणी हूँ। आप सोमवती अमावस्याके दिन हमारे घर भोजन करो। भाँड़ बोला कि ठीक है, पर हम अपने हाथसे बना भोजन करते हैं। वेश्याने कहा कि अच्छी बात है।

सोमवती अमावस्याके दिन वह भाँड़ वेश्याके घर आया। वेश्याने भोजनकी सब सामग्री लाकर सामने रख दी। भाँड़ने रसोई बनाई और अच्छी तरहसे भोजन किया। भोजनके बाद वेश्याने उसको दक्षिणा दी। अब वेश्या ऊपर आकाशकी तरफ देखने लगी। भाँड़ने पूछा कि ऊपर क्या देखती हो? वेश्या बोली कि मैं देखती हूँ कि स्वर्गसे विमान आ रहा है कि नहीं! भाँड़ बोला—

तू खत्राणी मैं पांडियो, तू वेश्या मैं भाँड़।
तेरे जिमाये जीमने, पत्थर पड़सी राँड़॥

ऊपरसे विमान आना तो दूर रहा, पत्थर पड़ेंगे पत्थर!

तात्पर्य है कि आप कुछ भी करो, रामजी कभी ठगाईमें आनेवाले नहीं हैं! जीवन भ्रष्ट हो, पाप करते हो तो रामेश्वरमें जल चढ़ानेसे कुछ नहीं होगा। यह तो आपकी चालाकी है, कल्याणकी इच्छा नहीं है! चालाकीसे कल्याण नहीं होता। यह कहीं नहीं लिखा है कि खुला पाप करो और एक कथा करवा लो तो पुण्य हो जायगा।

एक गाँवमें दो ठाकुर थे। दोनोंका आधा-आधा गाँव था। एक ठाकुर तो साधन-भजन, सत्संग करनेवाला था, पर दूसरा ऐसा नहीं था। एक दिन उसके मनमें आया कि दूसरा कथा कराता है तो मैं भी कथा कराऊँ। उसने ब्राह्मणको बुलाया और कहा कि महाराज, हमारे यहाँ रामायणकी कथा कर दो। उसने कहा कि ठीक है, कर देंगे; आप भी कथा सुनना। ठाकुरने कहा कि मैं नहीं सुनूँगा; क्योंकि मेरा आपपर विश्वास है कि आप ठीक कथा करेंगे। कथामें तो इसलिये बैठते हैं कि विश्वास नहीं है कि ये कथा ठीक करेंगे या नहीं, इसलिये वे परीक्षा करनेके लिये बैठते हैं। मैं आपपर विश्वास करता हूँ, इसलिये सुननेकी जरूरत नहीं।

जब कथाका अन्तिम दिन आया, तब ब्राह्मणके कहनेपर ठाकुर कथामें आया। कथाकी समाप्तिपर ब्राह्मणने ठाकुरसे कहा कि कोई बात पूछनी हो तो पूछो। ठाकुर बोला कि रामायण तो मेरी सुनी हुई है कि एक राम था और एक रावण था, पर एक शंका है कि उनमें राक्षस कौन था? राम राक्षस था या रावण राक्षस था? ब्राह्मण बोला कि न राम राक्षस था, न रावण राक्षस था; एक राक्षस तो तू है और एक राक्षस मैं हूँ!

चालाकीसे कभी कल्याण नहीं होता—यह सदा याद रखो। सीधा-सरल भाव होनेसे ही कल्याण होता है। भगवान् कहते हैं—

सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई॥
मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई॥

(मानस, उत्तर० ४६। १-२)

'सरल स्वभाव हो, मनमें कुटिलता न हो और जो कुछ मिले, उसीमें सदा सन्तोष रखे। मेरा दास कहलाकर यदि कोई मनुष्योंकी आशा करता है तो तुम्हीं कहो, उसका क्या विश्वास है? बहुत बात बढ़ाकर क्या कहूँ, हे भाइयो! मैं तो इसी आचरणके वशमें हूँ।'

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

(मानस० सुन्दर० ४४। ३)

'जो मनुष्य निर्मल मनका होता है, वही मुझे पाता है। मुझे कपट और छल-छिद्र नहीं सुहाते।'

*** *** ***

श्रोता—वर्तमान समयमें मांस-मदिराका सेवन बड़ी तेजीसे बढ़ रहा है! इसको कैसे रोका जाय?

स्वामीजी—बात कही जा सकती है, पर रोकना अपने हाथकी बात नहीं है। ये कलियुगके एजेण्ट हैं, कलियुगके वशमें हैं, इसलिये हमारी बात मानते नहीं! ये उल्टी बात मानेंगे, सुल्टी बात नहीं मानेंगे। हमारी बात मानो तो **मांस-मदिराका सेवन सनातन-धर्ममात्रमें बिलकुल नहीं होना चाहिये।**

मदिरापान बहुत बड़ा पाप है। इसके समान पाप कोई है ही नहीं! मदिरापान, गुरुपत्नीगमन, सोनेकी चोरी और ब्रह्महत्या—ये चार महापाप कहे गये हैं। इन चार महापाप करनेवालेका तीन वर्षतक कोई संग कर ले तो उसको भी वही महापाप लगेगा। **मदिरापान गौहत्यासे भी बढ़कर महान् भयंकर पाप है!** कारण कि यह धार्मिक परमाणुओंका नाश करता है। मांस खानेसे पाप लगता है, पर मदिरापान भीतरके धार्मिक बीजोंको भूँज देता है। मदिराका पारमार्थिक बातोंके साथ विरोध है। मदिरा पीनेवालेकी बुद्धि ठीक नहीं रहती.....नहीं रहती.....नहीं रहती! मदिराको सूँघना भी मदिरा पीनेके समान माना गया है!

श्रोता—देवीके मन्दिरमें शराब चढ़ाते हैं, और फिर उसे प्रसाद समझकर ग्रहण करते हैं, यह उचित है क्या?

स्वामीजी—यह बिलकुल अनुचित है। ऐसा करनेवाले कलियुगके एजेण्ट हैं, घोर कलियुगके प्रचारक हैं!

विधि होनेपर भी त्याग सबसे बढ़िया है। शास्त्रमें सौंफ खानेको निषिद्ध नहीं लिखा है; परन्तु रोजाना सौंफ खानेका व्यसन भी अच्छा नहीं है। फिर मदिरा तो महान् मलिन चीज है। मेरी आपलोगोंसे प्रार्थना है कि कम-से-कम नरकोंसे तो बचो! मांस, मदिरा, मछली, अण्डेका प्रचार महान् पतन करनेवाला है।

मांस, अण्डा खानेसे पशु-पक्षियोंके रोग मनुष्योंमें आ जायँगे। पशु-पक्षियोंके रोग और मनुष्योंके रोग मिल करके ऐसे वर्णसंकर रोग पैदा होंगे, जिनका कोई इलाज नहीं है!

*** *** ***

अभी बड़ा सुन्दर मौका है। इसमें चेत न करके आप बड़ी भारी भूल कर रहे हैं। **अभी चेत करके अपना उद्धार करनेमें लग जाओ तो ठीक है, नहीं तो फिर इससे बढ़िया मौका मिलनेकी सम्भावना नहीं है।** सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्ति तो प्रारब्धके अधीन है, लगनके अधीन नहीं, पर आध्यात्मिक उन्नति केवल लगनके अधीन है। लगन हो तो जरूर प्राप्ति होगी, इसमें सन्देह नहीं है।

जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥

(मानस, बाल० २५९। ३)

जैसे भगवान् कहाँ हैं, कैसे हैं, क्या करते हैं आदि बातोंकी जरूरत नहीं है, प्रत्युत भगवान् हैं और मेरे हैं—इन दो बातोंकी जरूरत है, ऐसे ही आप कैसे हो, जीवन कैसा है, कैसे आचरण हैं, क्या किया है आदि बातोंकी खास जरूरत नहीं है, प्रत्युत तीव्र लगनकी जरूरत है। परमात्माकी प्राप्ति चाहनेवालोंके लिये कलियुग खराब नहीं है, प्रत्युत बड़ा उत्तम है। अभी बहुत अच्छी-अच्छी बातें, युक्तियाँ मिल रही हैं। अभी अपना उद्धार नहीं करोगे तो कब करोगे?

आप सच्चे हृदयसे 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!'—इस प्रकार बार-बार भगवान्‌को पुकारो। जरूर फायदा होगा, इसमें सन्देह नहीं है। आप सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ। आप कमजोर हो, पापी हो, अच्छे नहीं हो, इसका विचार मत करो। भगवान् भूतकालको नहीं देखते। वे वर्तमानकी लालसा देखते हैं।

रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥

(मानस, बाल० २९। ३)

'प्रभुके चित्तमें अपने भक्तोंकी की हुई भूल-चूक तो याद नहीं रहती, पर उनके हृदयकी अच्छाईको वे सौ-सौ बार याद करते हैं!'

एक भक्त इमलीके वृक्षके नीचे बैठकर भजन करता था। एक दिन वहाँ नारदजी आ गये। उस भक्तने नारदजीसे कहा कि आप भगवान्‌से पूछना कि मुझे कब मिलेंगे। जब नारदजी भगवान्‌के पास गये तो उन्होंने भगवान्‌से उस भक्तकी बात पूछी। भगवान्‌ने कहा कि इमलीके वृक्षके जितने पत्ते हैं, उतने वर्षोंके बाद मिलूँगा। नारदजीने भक्तको बताया कि इमलीके वृक्षके जितने पत्ते हैं, उतने वर्षोंके बाद भगवान् मिलेंगे। भक्तने पुनः पूछा कि क्या यह भगवान्‌ने कहा है? नारदजीने कहा कि हाँ, खुद भगवान्‌ने कहा है। भक्त खुशीसे नाचने लगा कि मुझे भगवान् मिलेंगे! भगवान् मिलेंगे!! उसी समय भगवान् वहाँ प्रकट हो गये! नारदजीने भगवान्‌को देखा तो बोले कि महाराज! दुनिया झूठ बोलती है, पर आपपर हमारा ऐसा विश्वास नहीं था कि आप भी झूठ बोलते हो! आपने तो जितने इमलीके पत्ते हैं, उतने वर्षोंके बाद मिलनेकी बात कही थी, पर आप तो अभी मिल गये! भगवान् बोले कि जिस समय इसने पूछा था, उस समय इसकी जितनी लालसा थी, उसके अनुसार इमलीके जितने पत्ते हैं, उतने वर्ष लगते, पर अब 'मेरेको भगवान् मिलेंगे' इस बातको लेकर इसकी उत्कण्ठा इतनी बढ़ गयी कि समयकी सीमा समाप्त हो गयी!

आपका भजन-स्मरण कैसा है, आपकी साधना कैसी है, यह भगवान् नहीं देखते। वे आपका भाव देखते हैं। भाव बदलते ही दुनिया दूसरी हो जाती है। दुनियाका सब हिसाब बदल जाता है। इसलिये आप चलते-फिरते हरदम केवल प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भगवान्‌को 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। उनकी कृपासे सब काम ठीक होता है। उनकी कृपासे असम्भव भी सम्भव हो जाता है। भगवान्‌के दरबारमें कोई कमी नहीं है। जितनी कमी आती है, हमारी तरफसे आती है।

*** *** ***

श्रोता—एक प्रचलन है कि घरमें कोई मर जाता है तो उसे देवी-देवता या पितर मानकर उसकी विशेष पूजा करते हैं। यदि कोई काम सिद्ध हो जाता है तो कहते हैं कि हमारे पितरने कर दिया, और अनिष्ट हो जाता है तो कहते हैं कि हमारी सेवामें कोई कमी रह गयी, इसलिये उन्होंने हमारा अनिष्ट कर दिया। अब प्रश्न यह है कि सब करनेवाले तो भगवान् ही हैं, फिर पितरोंको ज्यादा

महत्त्व देना कहाँतक उचित है?

स्वामीजी—पितरोंको ज्यादा महत्त्व देना ठीक नहीं है। परन्तु पितरोंका श्राद्ध-तर्पण जरूर करना चाहिये। शास्त्रोंमें रोजाना पितरोंका श्राद्ध-तर्पण करनेकी बात कही गयी है। रोजाना न कर सको तो कम-से-कम उनकी वार्षिक तिथि तथा पितृपक्षमें तो जरूर ही श्राद्ध-तर्पण करना चाहिये। घरमें अलगसे पितरोंकी पूजा करनेकी जरूरत नहीं है।

आप सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ और हरदम 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' ऐसे भगवान्‌को पुकारो। सिवाय भगवान्‌के अपना कोई नहीं है। भगवान् कभी नाराज नहीं होते, हमेशा कृपा ही करते हैं। जैसे, माँको गुस्सा भी आ जाय तो भी वह बालकका कभी अनिष्ट नहीं कर सकती। भगवान् तो माँसे भी बढ़कर हैं। उनसे बढ़कर कोई नहीं है।

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥

(मानस, किष्किन्धा० १२। १)

'हे पार्वती! जगत्‌में श्रीरामजीके समान हित करनेवाला गुरु, पिता, माता, बन्धु और स्वामी कोई नहीं है।'

कई लोग सन्तोंकी, गुरु महाराजकी विशेष कृपा मानते हैं, पर इसमें प्रायः ठगाई होती है। सच्ची बात बहुत कम है, ठगाई ज्यादा है। इसलिये भगवान्‌को मानना ही ठीक है। भगवान्‌को जितना मानो, उतना थोड़ा है। आजतक भगवान्‌की जितनी महिमा कही गयी है, वह भी थोड़ी है। आप कृपा करके स्वीकार कर लो कि हम भगवान्‌के हैं तो निहाल हो जाओगे। परन्तु किसीका चेला बन जाओगे तो मुश्किल हो जायगी! **गुरु बनानेमें बड़ा खतरा है! गुरु मिल गया तो भाग्य फूट जायगा!** गुरुको रुपया, भेंट मिल जायगी, आप भले ही नरकोंमें जाओ, उसकी कोई परवाह नहीं!

मैं गुरुकी निन्दा नहीं करता हूँ। मैं रोजाना व्याख्यानमें गुरुको नमस्कार करता हूँ। परन्तु आजकल पाखण्डका जमाना है। सिवाय ठगीके कुछ नहीं है। जो कहता है कि चेला बन जाओ, फिर बतायेंगे, वह बिलकुल ठग है.....बिलकुल ठग है.....बिलकुल ठग है। दुकानदारीके सिवाय कुछ नहीं है। जो असली सन्त-महात्मा हैं, उनके हृदयमें उदारता भरी रहती है। वे प्राणिमात्रका कल्याण चाहते हैं—**'सुहृदः सर्वदेहिनाम्'** (श्रीमद्भा० ३। २५। २१)। वे कल्याणकी बात हरेक आदमीको बतानेके लिये तैयार रहते हैं। वे किसीसे कुछ नहीं चाहते, नमस्कार भी नहीं!

किसीको अपने मातहत (अधीन) बनाना दुष्ट आदमीका काम है, सज्जनका काम नहीं। मातहत बनाना कुत्तोंका काम है। सन्त-महात्मा किसीको मातहत नहीं बनाते। ऐसे साधुओंको मैंने देखा है, जो चेलेको भी 'जी' सम्बोधनसे बुलाते हैं। चौकसरामजी महाराजको मैंने 'रामनारायणजी' कहकर बुलाते देखा है।

बाहरसे आप भले ही चेला-चेली बन जाओ, पर भीतरसे अपनेको भगवान्‌का ही मानो। सच्ची बात मिटेगी नहीं और बनावटी बात टिकेगी नहीं। भगवान् हमारे हैं तो किस बातकी कमी रही? भगवान्‌को अपना मान लो तो सब कमी पूरी हो जायगी। **भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जुड़ते ही आपकी कपूताई मिट जायगी, आप सपूत हो जाओगे।** आप भगवान्‌के पहले हैं, कपूत बादमें हुए हैं।

*** *** ***

भगवान्‌की प्रसन्नता लेनी हो तो भक्तोंको याद करो। भगवान्‌के भक्तोंको याद करनेसे भगवान् राजी होते हैं। जैसे बालकको राजी करनेसे माँ राजी हो जाती है, ऐसे ही भक्तोंको राजी करनेसे

भगवान् राजी हो जाते हैं। भगवान्‌के दरबारमें सबसे प्यारा भक्त ही है। भगवान् भक्तोंको देख-देखकर राजी होते हैं। जब भगवान्‌की कृपा होती है, तब भक्त मिलते हैं—

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥

(मानस, उत्तर० ६९। ७)

'जब द्रवै दीनदयालु राघव साधु-संगति पाइये'

(विनयपत्रिका १३६। १०)

हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत।
हरि रीझै जग देत हैं, हरिजन हरि ही देत॥

*** *** ***

गलती यह होती है कि जिस कामके लिये मनुष्यशरीर मिला है, वह काम न करके दूसरे काममें लग जाते हैं। रुपये कमानेके लिये, विषय-सेवनके लिये, निकम्मी बातोंके लिये, खेल-तमाशेके लिये मनुष्यशरीर नहीं मिला है। मनुष्यशरीर केवल कल्याणके लिये मिला है, जिससे बार-बार जन्मना-मरना न पड़े। मनुष्यशरीरके सिवाय अन्य किसी जगह कल्याणका, भगवत्प्राप्तिका मौका नहीं है। जैसे रसोईमें भोजन तैयार है और आप जाकर बैठ गये तो आपका मुख्य काम भोजन करना है। रसोईमें जाकर भोजन नहीं करोगे तो क्या काम करोगे? ऐसे ही मनुष्यशरीरमें आकर अपना कल्याण नहीं करोगे तो क्या काम करोगे? संसारका काम करते हुए भी आपका उद्देश्य भगवत्प्राप्ति ही रहना चाहिये।

आप हरेक काममें भगवान्‌को याद करनेकी आदत डाल लें। आपका सत्संग सफल हो जायगा! कहीं भी जायँ तो चार बार 'नारायण' नामका उच्चारण करके जायँ। सब काम ठीक हो जायगा और खराब कामसे बच जाओगे। खराब कामसे बचना और अच्छे काममें लगना—दोनों बातें 'नारायण-नारायण' कहनेसे हो जायँगी। भगवान्‌का जो भी नाम आपको प्रिय हो, वह लें। **अगर आप हरेक काममें भगवान्‌को याद करनेकी बात स्वीकार कर लें और बाल-बच्चोंको भी सिखा दें तो हमारा बहुत बड़ा काम हो जायगा! मैं आपकी अपने ऊपर बड़ी कृपा मानूँगा!**

*** *** ***

हरदम भगवान्‌को याद रखो। खास एक ही बात भगवान्‌से कहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। दो-दो, चार-चार मिनटमें कहते रहो। ऐसे दिन और रात, जबतक नींद न आये, तबतक कहते ही रहो। भगवान्‌के पीछे ही पड़ जाओ! जैसे वृक्षमें लगा हुआ फल अपने-आप बड़ा हो जाता है, अपने-आप मीठा हो जाता है। उसको बड़ा करना नहीं पड़ता, मीठा करना नहीं पड़ता। ऐसे ही **आप भगवान्‌से लगे रहो तो आप अपने-आप सन्त बन जाओगे।** जबानसे भगवान्‌का नाम लो, हृदयसे भगवान्‌का ध्यान करो, हाथोंसे भगवान्‌का काम करो।

हाथ काम मुख राम है, हिरदै साची प्रीत।
दरिया गृहस्थी साध की, याही उत्तम रीत॥

सबकी सेवा करना और भगवान्‌को याद करना—ये दो मनुष्यके खास काम हैं। किसीके साथ ठगाई, चोरी मत करो। किसीसे कोई कर्जा लिया है, चुराया है, डाका डाला है, ठगाई की है तो उसका फल अवश्य भोगना पड़ेगा। जो लिया है, वह ब्याजसहित चुकाना पड़ेगा। चुरुके एक विश्वेश्वरलालजी खेमका थे। वे वृद्ध थे, और उन्होंने बहुत-से सन्तोंका सत्संग किया था। उन्होंने एक बात बतायी कि एक मारवाड़ी आदमी था। वह पैसोंके लिये बम्बई गया, पर बहुत जल्दी वापिस आ गया और सब कर्जा चुका दिया। लोगोंके मनमें आश्चर्य हुआ कि यह इतनी जल्दी कैसे पैसे

कमाकर ले आया! इस घटनाको हुए अनेक दिन बीत गये। उसका एक लड़का हुआ। वह बड़ा हुआ तो उसका विवाह कर दिया। विवाह करनेके बाद वह बीमार हो गया। एक रात वह बहुत ज्यादा बीमार हो गया। उसके पास कई लोग बैठे थे कि न जाने कब प्राण चले जायँ! उस समय विश्वेश्वरलालजी खेमका भी वहीं बैठे थे। लड़केकी स्थिति ज्यादा खराब देखकर उसका पिता रोने लग गया। जवान लड़का हो और विवाह हो चुका हो तो उसके मरनेका दुःख ज्यादा होता है। पिताको रोते देख वह लड़का बोला कि 'अब रोनेसे क्या होगा? अमुक दिन तुम यहाँसे गये थे। तुम्हें रास्तेमें एक बंगाली मिला। उसके पास लगभग दस हजार रुपये थे। बीचके एक स्टेशनमें ठहरना पड़ा तो उसके साथ रातमें तुम एक भड़भुँजारीके घरमें ठहरे। रातमें तुम और भड़भुँजारी—दोनोंने मिलकर उस बंगालीको मार दिया और उसके सब रुपये ले लिये।' लड़केकी बातें सुनकर वहाँ बैठे लोग आपसमें एक-दूसरेको देखने लगे कि बात तो यह ठीक दीखती है; क्योंकि सबके मनमें पहलेसे ही यह शंका थी कि यह इतनी जल्दी रुपये कहाँसे लाया? फिर वह लड़का बोला कि 'मैं वही बंगाली हूँ और बदला लेनेके लिये ही इसके घरमें जन्मा हूँ। अभी भी कुछ कर्जा बाकी है, उसको लेने मैं एक बार फिर आऊँगा। ब्याजसहित सब कर्जा लूँगा।' वहाँ बैठे किसी आदमीने कहा कि 'यह बेचारी बनियेकी बेटी विधवा हो जायगी, इसका क्या कसूर?' यह सुनते ही वह लड़का तेजीसे बोला कि 'वही यह राँड़ भड़भुँजारी है! इन दोनोंने मिलकर मेरेको मारा था! अब यह जन्मभर दुःख पायेगी।'

लड़केकी बातें सुनकर उसका पिता बोला कि 'यह सन्निपातमें, बेहोशीमें बोलता है।' उसका लड़का तेजीसे बोला कि 'मैं सन्निपातमें नहीं बोलता हूँ। सच्ची बातें कहता हूँ। अभी बागलोंके घरमें दीवार फोड़कर चार चोर चोरी कर रहे हैं। जाकर देख लो। अगर यह बात सच्ची है तो मेरी बात भी सच्ची है।' उस समय तो वहाँ कोई गया नहीं, पर सुबह लोगोंने देखा तो बात सच्ची निकली।

ऐसे ही एक दूसरी सच्ची घटना है। हमारे गुरु महाराज पैसा तो रखते थे, पर संग्रह नहीं करते थे। उन्होंने दो सौ रुपये देकर एक गरीब लड़केका विवाह किया। उस समय उनके पासमें इतने ही रुपये थे। उस समय दो सौ रुपये बड़े कीमती हुआ करते थे। विवाह होनेके बाद वह लड़का मर गया। वह अपनी माँका एक ही बेटा था। हमारे महाराज भेलूमें थे, और वह लड़का चाँपासरमें था। चाँपासरसे बीकानेर आयें तो भेलू बीचमें पड़ता है। रातमें महाराजको स्वप्न आया। स्वप्नमें वह लड़का दिखायी दिया तो महाराजने पूछा कि 'केशव, तू यहाँ कैसे आया?' वह बोला कि 'मैं बीकानेर जा रहा हूँ।' महाराजने कहा कि 'तू माँको छोड़ आया?' वह बोला कि 'माँने तो पाप किया है, वह उसका फल भोगेगी। एक अन्धा लोहार था। उसने एक जगह बीस रुपये गाड़े थे, जिसको बालकपनमें माँने देख लिया। पीछे वे रुपये माँने निकाल लिये। अब इस पापसे वह दुःख पायेगी।'

वह रातभर अकेली रोती रहती। रातमें उसके रोनेकी आवाज लोग सुनते थे। वह बड़ी गरीब थी। महाराजने उसपर कर्जा नहीं रहने दिया। उससे एक गाय लेकर ब्राह्मणको दे दी और कहा कि तेरेपर कर्जा नहीं रहा, उतर गया। उसके घर मैं भी गया हूँ।

इसलिये भाई-बहनोंसे कहना है कि हरदम सावधान रहो। पाप, अन्याय, अत्याचार, दुराचार मत करो। किसीकी ठगाई मत करो, डाका मत डालो, चोरी मत करो, पराया हक मत लो, नहीं तो ब्याजसहित देना पड़ेगा! कहीं कोई चीज पड़ी मिल जाय तो वह भी दान-पुण्य कर दो, किसी अच्छे काममें लगा दो। दान-पुण्य करके यह कहो कि जिसकी चीज है, उसीको पुण्य हो जाय,

हमारेको नहीं। **अपने सिरपर किसीका कर्जा चढ़ाओ ही मत, नहीं तो चुकानेमें मुश्किल हो जायगी!** दूसरेका हक लेना बहुत खराब चीज है। अच्छे पुरुष कभी दूसरेका हक नहीं लेते। व्यापार करनेवाले भी सावधानी रखें। ऐसे कई आदमियोंको देखा है, जो उधारमें लिये रुपयोंको खा जाते हैं। उनकी बड़ी बुरी दशा होगी! वह रुपया हर अवस्थामें ब्याजसहित चुकाना पड़ेगा। इसलिये **जिस-किसीका भी कर्जा हो, जल्दी-जल्दी चुका दो। देरी मत करो। अभी चुकाओगे तो थोड़ेमें ही चुक जायगा, देरी करोगे तो बड़ी मुश्किल होगी!** लिया हुआ कर्जा भी खराब होता है, फिर चोरी, डाका, ठगाई आदिसे लिया हुआ पैसा बहुत ज्यादा खराब होता है। उसका भयंकर दण्ड होगा! **आपके पैसोंमें तो सब साथी हो जायँगे, पर पापमें कोई साथी नहीं होगा।**

*** *** ***

भगवान्‌से एक ही चीज माँगो कि 'हे नाथ! हे कृपासिन्धो! मैं आपको भूलूँ नहीं'। इसके सिवाय और कोई आवश्यकता नहीं। जितना भगवान्‌को याद रखोगे, उतना आपका स्वभाव सुधर जायगा, आचरण सुधर जायगा। आपका सब सुधर जायगा! भगवान्‌को याद रखनेसे कपूताई मिट जाती है और सपूताई आ जाती है। **भगवान्‌को याद करनेसे भी बढ़िया चीज है—भगवान्‌के साथ अपना सम्बन्ध मानना कि मैं भगवान्‌का हूँ। सम्बन्ध अखण्ड होता है। सम्बन्ध माननेसे भगवान्‌की याद स्वतः आती है, करनी नहीं पड़ती।** बिना याद किये याद आती है। मेरी माँ है—इस प्रकार माँको मान लिया तो अब याद करनेकी जरूरत नहीं। जैसे धनी आदमीके भीतर एक गरमी रहती है कि मेरे पास इतना धन है, ऐसे ही आपके भीतर गरमी रहनी चाहिये कि मैं भगवान्‌का हूँ!

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

(मानस, अरण्य० ११। ११)

आप कैसे ही हों, इस बातको मत छोड़ो कि हम भगवान्‌के हैं। सुख आये या दुःख आये, स्वस्थ रहें या बीमार रहें, नफा हो जाय या घाटा लग जाय, पर 'मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं'—इस सिद्धान्तसे कभी आपका मन विचलित नहीं होना चाहिये।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

(भर्तृहरिनीतिशतक)

'नीति-निपुण लोग निन्दा करें अथवा स्तुति, लक्ष्मी रहे अथवा जहाँ चाहे चली जाय और मृत्यु आज ही हो जाय अथवा युगान्तरमें, अपने उद्देश्यपर दृढ़ रहनेवाले धीर पुरुष न्यायपथसे एक पग भी पीछे नहीं हटते।'

*** *** ***

श्रोता—मनमें बुरे विचार आते हैं। अनेकों बार बुरे कार्य न करनेका निश्चय करनेके बाद भी बुरे कार्य हो जाते हैं, और इधर सुना है कि सन्त-महात्माओंके दर्शनमात्रसे पाप दूर हो जाते हैं!

स्वामीजी—भीतरमें भाव होता है, तब पाप दूर होते हैं। भाव न हो तो दूर नहीं होते। सत्संग करनेसे और सच्छास्त्रोंका अध्ययन करनेसे बुरे विचार जरूर मिटते हैं।

कल मेरे पास एक सज्जन आये थे। उन्होंने मेरेसे पूछा कि क्या आपने ईश्वरको देखा है? मनुष्य अपनी पूँजी, अपना धन नहीं बताता कि वह कहाँ रखा है तो क्या ईश्वर धनसे भी नीची

चीज है? मैंने कहा हमारे ईश्वरके लिये प्रचारकी जरूरत नहीं है। आप मानो चाहे मत मानो, हमें बाधा क्या लगी?

श्रोता—यहाँ सत्संगमें तो सब जगह भगवान् ही दीखता है, पर घर जानेपर, गृहस्थके वातावरणमें सब भूल जाते हैं! कोई सुगम रास्ता बतायें।

स्वामीजी—सुगम रास्ता तो मैं बताता हूँ, पर आप सुनते ही नहीं! आप दो-चार मिनटमें, दस-पन्द्रह मिनटमें यह बात मनसे कहना शुरू दो कि 'हे नाथ! हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। करके देखो तो सही! आपको कितना ही सुगम बतायें, आप करते ही नहीं! जब करना ही नहीं है, तो सुगम हो तो क्या, कठिन हो तो क्या! आप सुन लेते हैं तो यह भी आपकी कृपा है!

श्रोता—अपनेमें कोई विकार नहीं है—ऐसी धारणा करनेपर तत्त्वकी प्राप्ति शीघ्रतासे हो जाती है। इस विषयको आप बतायें, जिससे हमें इसका अनुभव हो जाय।

स्वामीजी—देखो भाई, यह तमाशा नहीं है! लगन होनी चाहिये। भीतरमें लगन हो कि तत्त्वज्ञान कैसे हो? कहाँ जाऊँ? किससे पूछूँ? ऐसी लगन हो, फिर मैं बताऊँ तो आप करोगे, नहीं तो करोगे नहीं। 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'—यह कोई कम नहीं है, बहुत बढ़िया चीज है। महीना-दो महीना करके देखो तो सही! इससे बड़ी कोई चीज है नहीं!

श्रोता—क्या राधाजीकी उपासनाके बिना भगवान् कृष्णको नहीं पाया जा सकता?

स्वामीजी—आप करके तो देखो! कोरी बातें कहनेसे क्या लाभ? शास्त्रमें ऐसा आता है, पर यह नियम नहीं है।

श्रोता—शरीरी जब शरीरको छोड़ देता है, तब मृत शरीरकी हड्डियाँ गंगाजीमें डालनेसे किसको लाभ होगा, शरीरको या शरीरीको?

स्वामीजी—शरीरीको लाभ होगा; क्योंकि उसने शरीरको अपना माना था।

श्रोता—दस वर्षोंसे एक प्रश्न मनमें बोझा बना हुआ है कि सत्संग करनेपर भी हमारी कथनी और करनीमें अन्तर क्यों रहता है?

स्वामीजी—आपका पक्का विचार नहीं हुआ है। पक्का विचार हो जाय तो कथनी और करनीमें फर्क मिट जायगा। जबतक आप पक्का विचार नहीं करेंगे, तबतक यह फर्क मिटेगा नहीं, चाहे सौ वर्ष क्यों न बीत जायँ! लगन हो तो एक दिनमें फर्क पड़ जायगा।

*** *** ***

संसारका जो सुख आप चाहते हो, उस सुखमें दुःख-ही-दुःख भरा हुआ है। उस सुखको आप छोड़ते नहीं, दुःख आपको छोड़ता नहीं। विषभरे लड्डुओंको आप छोड़ते नहीं, विष आपको छोड़ता नहीं! जो दूसरोंके सुखसे सुखी होता है, उसका दुःख मिट जाता है। परन्तु जो अपना सुख चाहता है, वह उतना ही दुःख भोगता है।

परिवार-नियोजन, गर्भपात, नसबन्दी आदि सब शास्त्र-विरुद्ध, प्रकृति-विरुद्ध काम हो रहे हैं। इनसे प्रकृति कुपित हो रही है। सभी जीव-जन्तुओंको मारने-ही-मारनेकी तरफ दृष्टि हो रही है! मनुष्योंको मार सकते नहीं, इसलिये उनको जन्मने ही मत दो—यह दृष्टि हो रही है! खेतोंमें जहरका छिड़काव करते हैं कि अन्न बहुत पैदा होगा। जीव तो मर जायँगे, पर उस अन्नको खानेवालोंकी क्या दशा होगी—यह सोचते ही नहीं! परिणाममें सब जगह जहर-ही-जहर फैल रहा है। नदियोंका

जल दूषित हो गया है। अन्न और जल भी जहरीले हो गये हैं। घास भी जहरीली हो गयी है। जानवरोंका मांस भी जहरीला हो गया है। इस कारण गीध भी बहुत कम हो गये हैं। इतना ही नहीं, माँके दूधमें भी जहर आ गया है! अन्न, जल और हवा—तीनोंमें जहर फैल रहा है। इसका नतीजा यह होगा कि जीना मुश्किल हो जायगा! उल्टे कर्मोंका फल सुल्टा नहीं मिलेगा.....नहीं मिलेगा.....नहीं मिलेगा! दुःख पा रहे हैं, कष्ट उठा रहे हैं, फिर भी प्रचार जहरका ही कर रहे हैं! **परिवार-नियोजनको बड़ा आवश्यक मानते हैं, पर इसका परिणाम देखना! सन्ताप होगा, आफत आयेगी, दुःख पाना पड़ेगा, रोना पड़ेगा! घरोंमें लड़ाइयाँ होंगी, आपसमें कलह होगी। हम भविष्यको जानते नहीं हैं, पर चाल ऐसी है कि आपसमें बड़ी भारी मारकाट होगी!!**

जिन लोगोंने भजन-स्मरण किया है, आध्यात्मिक विचार किया है, उनको शान्ति मिली है। **उनमें भी दुःख आता है तो दुःख दूर करनेके लिये दुःख आता है।** उसका परिणाम अच्छा होगा, उनको शान्ति मिलेगी। पहले जो उल्टा काम किया है, उसका फल दुःख मिलेगा। अब आप सुल्टा काम करो, धर्मका पालन करो, पुण्यकर्म करो, भजन-स्मरण करो। आप कहोगे कि यह हमारे भाग्यमें नहीं है तो यह भाग्यसे नहीं होता, प्रत्युत करनेसे होता है; क्योंकि यह नया कर्म है। भाग्यसे रोटी मिलेगी, धन मिलेगा, भोग मिलेगा।

*** *** ***

मनुष्योंका प्रायः यह भाव रहता है कि हमारे अनुकूल परिस्थिति बन जाय, प्रतिकूल परिस्थिति न रहे। जो होता है, वह प्रारब्धके अनुसार ही होता है। प्रारब्धसे इधर-उधर होता ही नहीं। आप कितना ही उद्योग करें, जो होनेवाला है, वह होगा ही—यह सिद्धान्त है। परन्तु अपना उद्योग कभी छोड़ना नहीं चाहिये। अच्छे कामके लिये अपना उद्योग करते रहना चाहिये, पर चिन्ता नहीं करनी चाहिये। **जो होनेवाला है, वैसा ही होगा—यह जो प्रारब्धकी बात कही जाती है, यह चिन्ता दूर करनेके लिये है, अपना उद्योग छोड़नेके लिये नहीं।**

मनुष्यशरीर मिला है तो सच्चे हृदयसे उद्योग करते रहना चाहिये, पर चिन्ता नहीं करनी चाहिये। चिन्तासे होनेवाला दुःख अपनी मूर्खतासे होता है, प्रारब्धसे नहीं। गीताका आरम्भ ही चिन्ता मिटानेकी बातसे हुआ है—'**अशोच्यानन्वशोचस्त्वं.....**' (गीता २। ११)। अपना कर्तव्य-कर्म करते रहो, पर चिन्ता मत करो। चिन्ता करनेसे कुछ भी लाभ नहीं होता, आप मुफ्तमें ही दुःख पाते हो! सब आदमी मिलकर धनकी चिन्ता करें तो क्या एक कौड़ी भी पैदा हो जायगी? इसलिये प्रारब्धकी बात केवल चिन्ता मिटानेके लिये है, उद्योग न करनेके लिये कभी है ही नहीं.....है ही नहीं.....है ही नहीं! चिन्ता मिटानेके लिये ही सत्संग है। अगर चिन्ता होती है तो आपने सत्संग ध्यान देकर सुना नहीं।

'**करनेमें सावधान और होनेमें प्रसन्न**'—यह छोटी-सी बात आप मान लो तो निहाल हो जाओगे, आपकी चिन्ता मिट जायगी! इसको लिख लो, याद कर लो। जो होनेवाला है, वह होकर ही रहेगा, फिर चिन्ता करनेसे क्या लाभ?

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ॥

(मानस, अयोध्या० १७१)

'मुनिनाथ वसिष्ठजीने दुःखी होकर कहा कि हे भरत! सुनो, भावी (होनहार) बड़ी बलवान् है। हानि-लाभ, जीवन-मरण और यश-अपयश—ये सब विधाताके हाथमें हैं।'

एक वर्ष अकाल पड़नेपर क्या किसानलोग खेती करना छोड़ देते हैं? व्यापारमें घाटा लगनेपर क्या व्यापार करना छोड़ देते हैं? व्यापारमें इतना ध्यान रखो कि कभी घाटा लगे तो कर्जा न हो। इतना खर्च नहीं करना चाहिये, जिससे सिरपर कर्जा हो जाय। कर्जा बहुत खराब चीज है। रूखी रोटी खा ले, पर कर्जा मत करे। इससे जीवन सुखी रहेगा। परन्तु कर्जा करनेवाला दुःखी होगा ही।

मनमें हलचल, चिन्ता होना प्रारब्ध नहीं है, प्रत्युत आपकी मूर्खता है। यह मूर्खता सत्संगसे मिटाई जा सकती है। परन्तु प्रारब्ध नहीं मिटेगा, वह तो आयेगा ही। प्रारब्धसे जीवन-निर्वाह होगा, पर थोड़ा दुःख पाना पड़ेगा। काम करोगे तो सुगमतासे जीवन-निर्वाह होगा। प्रारब्धमें होगा तो रोटी जरूर मिलेगी, और प्रारब्धमें नहीं है तो अरबपतिको भी नहीं मिलेगी! ऐसी बीमारी हो जायगी कि डॉक्टर खाने नहीं देगा! इसलिये करनेमें सावधान रहो और होनेमें प्रसन्न रहो। जो हो रहा है, वह बहुत ठीक हो रहा है। बेठीक है ही नहीं। उसे बेठीक मानना गलती है।

आपके पास संसारकी जितनी चीजें हैं, वे ऐश-आराम, शौकीनीके लिये नहीं हैं। उनसे निर्वाह करो और दूसरोंकी सेवा करो। शौकीनी महान् पतन करनेवाली चीज है। उसके लिये धन इकट्ठा करोगे तो महान् दुःख होगा, सन्ताप होगा। **धनका खर्च बढ़िया है, धन बढ़िया है ही नहीं।**

श्रोता—अमुक काम अच्छा है या मन्दा है—इसका निर्णय किस आधारपर करें?

स्वामीजी—जिसमें अपना स्वार्थ है, वह मन्दा है और जिसमें दूसरोंका हित है, वह बढ़िया है। सीधी बात है, लिख लो!

श्रोता—अच्छे-अच्छे काम करते रहनेपर भी बीचमें जो तिरस्कार, अपमान मिलता है, उस समय भी धीरज रखते हुए उत्साहपूर्वक काममें लगे रहनेकी हिम्मत कैसे आये?

स्वामीजी—एक किसान खेती करता है, पर पहलेका धान न होनेसे भूखा मरता है, और एक किसान खेती करता ही नहीं, पर पहलेका धान होनेसे खाता है। पहलेका बोया हुआ अभी खाता है, और अभीका बोया हुआ आगे खायेगा। ऐसे ही अभी जो तिरस्कार, अपमान मिलता है, यह पहलेका प्रारब्ध है। अभी जो अच्छा काम करते हैं, उसका फल आगे मिलेगा।

*** *** ***

एक बहुत बढ़िया बात है! जैसे, अपने माता-पिताको कोई जान नहीं सकता; परन्तु उनको मान सकता है। उनको माननेके सिवाय और कोई उपाय है ही नहीं। माँको कैसे जानें? क्योंकि जन्मके समय हमें होश ही नहीं था। पिताको कैसे जानें? क्योंकि उस समय हमारा जन्म ही नहीं हुआ था। लोग कहते हैं कि ये तुम्हारे माता-पिता हैं तो हम सुनकर मान लेते हैं। माननेमें हमें सन्देह नहीं रहता। ऐसे ही जितना संसार है, सब केवल भगवान्‌से पैदा हुआ है। उस भगवान्‌को हम जान नहीं सकते, प्रत्युत सन्त-महात्मा, वेद, शास्त्र, पुराण आदिसे सुनकर मान ही सकते हैं। जो सम्पूर्ण सृष्टिको उत्पन्न करनेवाला है, उसको उत्पन्न होनेवाला कैसे जानेगा?

जैसे माता-पिताको जान तो नहीं सकते, पर माने बिना रह नहीं सकते, ऐसे ही भगवान्‌को जान तो नहीं सकते, पर माने बिना रह नहीं सकते। माना हुआ सच्चा है, इसमें तिल-जितना भी सन्देह नहीं है। ऐसे परमपिता भगवान्‌को आप अपना मान लो—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥'*** (मानस, उत्तर० ११७। १); **'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५। ७)।

गीताके अन्तमें भगवान्‌ने अर्जुनसे पूछा कि क्या तुमने एकाग्रचित्तसे गीता सुनी? और क्या तुम्हारा अज्ञानजनित मोह नष्ट हुआ? तात्पर्य था कि गीता अगर ठीक ध्यानसे सुने तो मोह नष्ट हो जाता

है। अर्जुनने उत्तर दिया—'**नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत**'(गीता १८। ७३) 'हे अच्युत! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया है और मुझे स्मृति प्राप्त हो गयी है।' यह 'स्मृति' क्या है—यह बात मामूली नहीं है! मेरेको सत्संग करते, पुस्तकोंको पढ़ते कई वर्ष हो गये, पर पता नहीं लगा कि 'स्मृति' का असली स्वरूप क्या है? असली स्वरूप वह है, जो अभी आपको बताया है! यदि आप इसपर ध्यान दें तो आपको पता लग जायगा कि स्मृति इसको कहते हैं।

*** *** ***

जैसे बच्चा माँके पीछे पड़ जाता है कि मेरेको लड्डू दे दे, ऐसे ही आप भगवान्‌के पीछे पड़ जाओ कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। रात और दिन पीछे ही पड़ जाओ, छोड़ो ही नहीं! एक ही बात कि भगवान्‌को भूलूँ नहीं—***'सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ'*** (मानस, अयोध्या० १२९)। सब तीर्थ, व्रत आदिका एक ही फल माँगे कि भगवान्‌को भूलें नहीं। हरदम लगन लग जाय कि 'हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं; हे मेरे स्वामी! मैं आपको भूलूँ नहीं' तो आपकी स्थिति बदल जायगी। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, पाखण्ड, दिखावटीपना आदि सब नष्ट हो जायँगे। राम, कृष्ण, शिव, शक्ति, गणेश सूर्य आदि जो आपका इष्ट हो, उसमें सच्चे हृदयसे लग जाओ कि 'हे नाथ! हे मेरे स्वामी! मैं आपको भूलूँ नहीं। मेरेको और कुछ नहीं चाहिये'। इसको छोड़ो मत। फिर देखो, पन्द्रह-बीस दिनोंमें, महीनेभरमें आपमें विलक्षणता आ जायगी। भगवान्‌को याद करनेसे आपका अन्तःकरण शुद्ध, निर्मल हो जायगा, एकदम ठीक हो जायगा।

शुद्ध-अशुद्ध, पवित्र-अपवित्र सब अवस्थाओंमें हरदम भगवान्‌से कहते रहो कि 'हे प्रभो! ऐसी कृपा करो कि आपको भूलूँ नहीं'। यह वहम नहीं रखना कि अशुद्ध अवस्थामें भगवान्‌को याद नहीं करना है। भगवान्‌के पीछे ही पड़ जाओ! न खुद चैनसे रहो, न भगवान्‌को चैन लेने दो! भगवान् खुश हो जायँगे!

*** *** ***

जबतक भोग और संग्रहमें मनुष्यकी वृत्ति लगी हुई है, तबतक वह परमात्माकी प्राप्ति नहीं कर सकता। उसके अन्तःकरणमें 'मुझे परमात्माको प्राप्त करना है'—यह वृत्ति ठहर नहीं सकती। गीतामें साफ लिखा है—

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥

(गीता २। ४४)

भोग भोगनेका खराब स्वभाव पड़ जायगा तो वह जन्म-जन्मान्तरतक आपको आफत-ही-आफत, दुःख-ही-दुःख देगा, और रुपयोंका कितना ही संग्रह कर लो, एक कौड़ी भी आपके साथ चलेगी नहीं। अगर आपको भोग और संग्रह बढ़िया दीखता हो तो मुझे समझा दो। अगर मेरी समझमें आ जायगा तो फिर मैं वैसा ही कहने लग जाऊँगा! परन्तु मेरी समझसे यह महान् नरकोंमें जानेका रास्ता है! मैं रुपयोंकी निन्दा नहीं करता हूँ। **रुपयोंमें जो लोभ है, भोगोंमें जो आसक्ति है, यह महान् अनर्थ करनेवाली है।** इसमें मुझे सन्देह नहीं है। जड़ पदार्थोंमें जो खिंचाव है, यही जन्म-मरण देनेवाला है।

मनुष्यके लिये रुपये बहुत जरूरी हैं—ऐसी बात बहुत सुननेमें आती है। अगर आपके लिये रुपये जरूरी हैं तो आपके पास रुपये अपने-आप आयेंगे, यह पक्की बात है! **जो आदमी भगवान्‌के भजनमें लगा है, उसके लिये भोगोंमें आसक्त होनेकी और रुपयोंका लोभ करनेकी बिल्कुल भी**

आवश्यकता नहीं है। आवश्यक वस्तु उसके पास अपने-आप आयेगी। हाँ, यह हो सकता है कि पहले ज्यादा आसक्ति करनेके कारण कुछ दिनोंके लिये आपको ज्यादा तंगी भोगनी पड़े, पर पीछे आपको इतनी वस्तुएँ मिलेंगी, जो कामना करनेवालोंको भी नहीं मिलतीं! रुपया चाहनेवालोंको जो रुपया नहीं मिलता, ऐसा रुपया मिलेगा! उल्टे आपको यह विचार होगा कि इन रुपयोंका करेंगे क्या!

त्याग करोगे तो कुछ दिन दुःख पाना पड़ेगा, थोड़ा प्रायश्चित्त करना पड़ेगा, पर बादमें कोई कमी नहीं रहेगी। परन्तु लोभके रहते हुए त्याग समझमें आता नहीं!

*** *** ***

अगर आप परमात्माको प्राप्त करना चाहते हैं तो मेरी बात मान लो। मेरी बात यह है कि **अगर चिन्मयताकी प्राप्ति चाहते हो तो जड़ताका मोह अर्थात् जो उत्पन्न और नष्ट होनेवाली हैं, जिनका आरम्भ और अन्त होता है, ऐसी चीजोंका मोह छोड़ना पड़ेगा.....पड़ेगा.....पड़ेगा!** यह पक्की बात है!

जो उत्पन्न और नष्ट होती हैं, जिनका आरम्भ और समाप्ति होती है, ऐसी चीजें अपने कामकी नहीं हैं। शरीर, परिवार, रुपये आदि सब जरूर छूटेंगे, यह एकदम निश्चित बात है। उनका मोह आपको पहले छोड़ना पड़ेगा। छोड़ोगे तो कल्याण होगा, नहीं छोड़ोगे तो जन्म-मरण होगा। **नामजप करोगे, कीर्तन करोगे, गीता-रामायणका पाठ करोगे तो लाभ जरूर होगा ही, यह नियम है; परन्तु कल्याण होगा जड़ताका त्याग करनेसे।** भजन, सत्संग, गीता-रामायणका पाठ निरर्थक नहीं जायगा, लाभ जरूर होगा, पर कल्याण हो जायगा—इसका पता नहीं है! भगवान्‌की कृपासे भी भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है; परन्तु अगर आप अपनी तरफसे भगवान्‌की प्राप्ति चाहते हो तो जड़ताका त्याग करना पड़ेगा।

थोड़ी-थोड़ी देरमें भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। अगर भूल जायँ तो दुःख होना चाहिये। अगर दस-पन्द्रह मिनट बीत गये और भगवान्‌को याद नहीं किया तो एक समय भोजन मत करो। घण्टा बीत जाय और भगवान्‌को याद नहीं किया तो दिनभरका उपवास करो। इसमें पक्के रहो तो लाभ हुए बिना रहेगा नहीं। जरूर उन्नति होगी, इसमें सन्देह नहीं है। यह दूसरा उपाय है।

*** *** ***

मैंने खूब विचार किया है और देखा है कि केवल सुखकी आसक्तिसे पतन हो रहा है! सुखका भोगी दुःख पाये बिना रह सकता ही नहीं। उसके पास दुःख आयेगा ही, चाहे आज आये या देरीसे आये। सुख चाहनेसे सुख मिलेगा नहीं और दुःख न चाहनेसे दुःख मिटेगा नहीं—ये दो बातें याद कर लो। अगर सुख चाहनेसे सुख मिल जाय और दुःख न चाहनेसे दुःख मिट जाय तो सब दुनिया सुखी हो जाती। परन्तु यह कभी होनेका है ही नहीं!

सुखकी इच्छा छोड़नेपर दुःख आता ही नहीं—इसको सब भाई-बहन याद कर लें। सुख चाहनेवालेको दुःख भोगना ही पड़ता है। इसलिये दुःख आनेपर सुखकी चाहना मिटाओ तो दुःख टिकेगा ही नहीं। ये बातें सत्संग करनेसे ही समझमें आती हैं। **सुख आनेसे दुःख दबता है, मिटता नहीं।** दबा हुआ दुःख जोरसे प्रकट होता है!

जीना चाहते हैं, इसलिये मरनेका दुःख होता है। जीनेकी इच्छा मिटा दो तो मरनेका दुःख होगा ही नहीं। जीना चाहनेसे जीना होता नहीं। अगर चाहनेसे जीना हो जाय तो कोई मरेगा ही नहीं!

इसी तरह सम्मानकी चाहना मिटाओ तो अपमानका दुःख नहीं होगा।

सन्तोंकी पहचान तीन जगह होती है—भिक्षामें, आदरमें और निरादरमें। एक कुत्ता भी आदर करनेसे राजी हो जाता है और निरादर करनेसे नाराज हो जाता है। जब आदर-निरादरमें राजी-नाराज होना मनुष्यपना भी नहीं है, तो फिर साधुपना कैसे होगा? आदरमें राजी और निरादरमें नाराज हो जाय तो इसमें साधुकी फजीती है, इज्जत नहीं है! वह साधु नहीं, स्वादु है। साधु स्वादु नहीं होता और स्वादु साधु नहीं होता। योगी भोगी नहीं होता और भोगी योगी नहीं होता।

*** *** ***

मन करण है, कर्ता नहीं। कर्ता आप हैं। जैसे जहाँतक लाइन बिछी है, वहींतक रेलगाड़ी जाती है, ऐसे ही आपने जहाँ-जहाँ सम्बन्ध जोड़ा है, वहाँ-वहाँ ही मन जाता है। पहले आप सम्बन्ध जोड़ते हैं, फिर वहाँ मन जाता है। अतः मन दोषी नहीं है, प्रत्युत कर्ता अर्थात् आप दोषी हैं। मन खराब नहीं है, आप खराब हो!

जो भगवान्‌की कथा सुनाते हैं, भगवान्‌की लीलाका वर्णन करते हैं, भगवान्‌की चर्चा करते हैं, वे अनुभवी न हों तो भी लाभ होता है। परन्तु उनको तात्त्विक, उपदेशकी बातें कहनेका अधिकार नहीं है। इसका अधिकार उनको है, जिन्होंने अनुभव करके देखा है।

*** *** ***

सच्ची बात तो एक ही है भाई! एक परमात्मा ही हैं—'**वासुदेवः सर्वम्**' (गीता ७। १९)। एक परमात्माके सिवाय दूसरा कोई था ही नहीं, कोई है ही नहीं, कोई होगा ही नहीं, कोई हो सकता ही नहीं। ये चार बातें मान लो तो सब ठीक हो जायगा। दूसरा दीखता है—यही बाधा है। दूसरी चीजकी सत्ता स्वीकार करना ही बाधा है। एकान्तमें बैठकर इसपर गहरा विचार करो। इसपर पूरा जोर लगाओ। फिर बेड़ा पार है!

वह एक ही परमात्मा अनेकरूपसे हो गया—'**सदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति**' (छान्दोग्य० ६। २। ३)। उस एकमें इतनी अनेकता है कि एक वृक्षके दो पत्ते भी समान नहीं होते। इमलीका वृक्ष बड़ा होता है, पर उसके पत्ते छोटे होते हैं। उसका एक पत्ता भी दूसरे पत्तेसे नहीं मिलता! इमलीके हजारों वृक्षोंके लाखों-करोड़ों पत्ते भी एक समान नहीं होते! इतना भेद होते हुए भी इमली एक है! **एकतामें अनेकता और अनेकतामें एकता—यह सिद्धान्त है। एक परमात्माकी ही सत्ता है, उसके सिवाय कुछ है ही नहीं, और वह मेरा है—ऐसा जब हो जायगा, तब प्रेमकी प्राप्ति हो जायगी।**

*** *** ***

पहले किये हुए कर्मोंके अनुसार ही जीवका जन्म होता है; परन्तु उसकी वृत्तियाँ संगसे बनती-बिगड़ती हैं। अच्छे घरमें जन्म लेनेवाला भी अगर कुसंग करता है तो वह कुसंगके असरसे खराब आदमी हो जाता है। ऐसे ही खराब घरमें जन्म लेनेपर भी अगर संग अच्छा मिलता है तो वह अच्छा आदमी हो जाता है। मनुष्य संगसे बनता-बिगड़ता है। स्वभाव संगसे बनता है। विचारका, पढ़ाईका भी असर पड़ता है, पर संगका असर विशेष पड़ता है। खराब घरमें जन्म लेनेवाला खराब और अच्छे घरमें जन्म लेनेवाला अच्छा होता है—यह नियम नहीं है। इसलिये कुसंगसे बचनेकी और अच्छे संगमें रहनेकी बड़ी भारी आवश्यकता है।

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते।
स सद्भिः सह कर्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम्॥

(मार्कण्डेयपुराण ३७। २३)

'संगका सब प्रकारसे त्याग करना चाहिये; किन्तु यदि उसका त्याग न किया जा सके तो सत्पुरुषोंका संग करना चाहिये; क्योंकि सत्पुरुषोंका संग ही उसकी ओषधि है।'

इसलिये अच्छा संग करो, अच्छी पुस्तकें पढ़ो।

*** *** ***

तीर्थोंमें रहना हो तो नियमपूर्वक रहना चाहिये। संयम रखना चाहिये। ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। भोजन एक समय करो अथवा दो समय करो, पर उसमें संयम रखो। बोलेनेमें भी संयम रखो। सत्य बोलो। मौन रखो। भजन-स्मरण करो। ज्यादा बोलनेमें झूठ-कपट आ जाता है, इसलिये कम बोलो। जमीन अच्छी होती है तो उसमें बोया हुआ धान भी अच्छा होता है। इसलिये तीर्थमें किया हुआ भजन विशेष लाभदायक होता है। केवल तीर्थमें जानेसे भी लाभ है, पर वहाँ कोई पाप बन जायगा तो उसका बड़ा भयंकर फल होगा! रामायणमें आया है—

तब रघुपति रावन के सीस भुजा सर चाप।
काटे बहुत बढ़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप॥

(मानस, लंका० ९७)

'श्रीरघुनाथजीने रावणके सिर, भुजाएँ, बाण और धनुष काट डाले, पर वे पुनः वैसे ही बढ़ गये, जैसे तीर्थमें किये हुए पाप बढ़ जाते हैं (कई गुना अधिक भयंकर फल देते हैं)!'

तीर्थमें किया गया पाप बहुत प्रबल होता है, इसलिये तीर्थमें बड़े संयमसे रहना चाहिये। तीर्थोंमें पुण्य करनेका बड़ा भारी माहात्म्य है। हरदम भगवान्‌का स्मरण करते रहना चाहिये। जहाँ रोजाना सैकड़ों आदमी आकर नमस्कार करते हैं, वहाँ विलक्षण शक्ति पैदा हो जाती है। इसलिये ऐसे क्षेत्रमें आकर शरीर-इन्द्रियाँ-मनका संयम रखना चाहिये। हमारे द्वारा किसीको किंचिन्मात्र भी दुःख न पहुँचे। सबको सुख पहुँचे। सबकी सेवा हो। जितना दूसरोंको सुख पहुँचाओगे, उतना आपको सुख होगा, आपका कल्याण होगा।

जैसे अन्य शरीरोंकी अपेक्षा मनुष्यशरीर विशेष है, ऐसे ही अन्य स्थानोंकी अपेक्षा तीर्थ विशेष होते हैं। तीर्थमें गन्दगी नहीं करनी चाहिये। उसका दोष लगता है। गन्दगीसे दूसरे आदमीको दुःख होता है तो उसका पाप लगता है। यों तो मनुष्यजन्ममें हरदम सावधानी रखनेकी आवश्यकता है, पर तीर्थोंमें विशेष सावधानी रखनी चाहिये।

*** *** ***

श्रोता—गाँववालोंकी एक शंका है कि भगवान् गायको इतना चाहते हैं, सन्त-महात्मा भी गायको बहुत चाहते हैं, तो भगवान् कम-से-कम इतनी वर्षा कर दें कि गायोंके लिये घास हो जाय। गायोंपर ही संकट क्यों आया है? हमलोगोंके तो कर्म ही ऐसे हैं, पर गायको तो देना चाहिये!

स्वामीजी—अरे, आपकी परीक्षा कर रहे हैं भगवान्! गाय बेचारी कुछ बोल सकती नहीं, उसको आप घास नहीं देते तो आप परीक्षामें फेल हो रहे हो! भगवान् आपको चेतावनी दे रहे हैं। जैसे आपका भाग्य है, ऐसे गायोंका भी भाग्य है। परन्तु आपकी परीक्षा हो रही है कि मनुष्य होकर भी अगर गायोंका पालन नहीं करोगे तो फिर मनुष्यजन्म नहीं मिलेगा। जैसे बारह महीना पढ़नेके बाद विद्यार्थीकी परीक्षाका दिन आता है, ऐसे ही अभी आपकी परीक्षाका दिन आया है।

गायोंका पालन, रक्षा करनेका बड़ा भारी पुण्य है। आजकल तो ज्यादा पुण्य है! आजकल खेती करनेवाले भी गाय नहीं रखते! खेतीसे गायका पालन होता है और गायसे खेती बढ़िया होती है।

खेतमें गायें बैठें, गोबर-गोमूत्र करें तो खेत कभी पुराना नहीं होता, नया-का-नया रहता है।

कितने दु:खकी बात है कि लोग घरकी गायको, बछड़ा-बछड़ीको यों ही छोड़ रहे हैं! आपको कोई रोटी न दे और घरसे निकाल दे तो क्या दशा होगी? आप तो माँग भी सकते हो, पर गाय बेचारी माँग सकती नहीं, बोल सकती नहीं! खानेके लिये खेतमें जाती है तो वहाँ मार पड़ती है! अब वह करे क्या? इसलिये आप गायका पालन नहीं करोगे तो आपको दण्ड होगा।

आप भगवान्‌से तो कृपा चाहते हो, पर पशुओंपर कृपा करते नहीं, तो आप कृपा पानेके अधिकारी नहीं हो। जो पशुओंको मारता है, मांस खाता है, वह कृपाका पात्र नहीं होता। आप अपनेसे कमजोरको मार देते हो और खा जाते हो, तो आपको भी कोई मार दे तो आप रोनेके, पश्चात्ताप करनेके, शिकायत करनेके भी पात्र नहीं हो।

अर्जुन और कर्णके युद्धके समय जब अपने रथका चक्का निकालने कर्ण रथसे नीचे उतर गया, तब अर्जुनको बाण चलाते देख कर्ण उनसे बोला कि तुम शस्त्र और शास्त्र दोनोंको जाननेवाले हो, फिर मेरेपर बाण कैसे चलाते हो? अर्जुनने बाण चलाना बन्द कर दिया। तब भगवान्‌ने अर्जुनको बाण चलानेकी आज्ञा दी तो उन्होंने बाण चलाना आरम्भ कर दिया; क्योंकि अर्जुनने गीतामें कह दिया था—'**करिष्ये वचनं तव**' 'अब आप जैसा कहो, वैसा करूँगा' (गीता १८। ७३)। भगवान् कर्णसे बोले—'आग लगानेवाला, विष देनेवाला, हाथमें शस्त्र लेकर मारनेको तैयार, धन हरनेवाला, जमीन छीननेवाला और स्त्रीका हरण करनेवाला—ये छहों ही आततायी हैं। आते हुए आततायीको बिना ही विचारे मार देना चाहिये। आततायीको मारनेसे मारनेवालेको कोई भी दोष (पाप) नहीं लगता।* तुमने तो ये छहों काम किये हैं!' सुनकर कर्ण चुप हो गया।

जो दूसरोंकी रक्षा नहीं करता, पर अपनी रक्षा चाहता है, वह बेईमान है। **आप अपनेसे छोटोंकी रक्षा तो करते नहीं, और बड़ोंसे अपनी रक्षा चाहते हो—यह अन्याय है। भगवान्‌से अपनी रक्षा चाहते हो तो भगवान् रक्षा करेंगे नहीं।** आप छोटोंकी रक्षा करोगे तो बड़े भी आपकी रक्षा करेंगे। आप छोटोंकी रक्षा नहीं करोगे तो आपकी रक्षा कौन करेगा और क्यों करेगा?

आजकल गाँवोंमें भी मदिरा बहुत फैल गयी है! छोटे-छोटे गाँवोंमें भी मदिराकी दुकानें हो गयी हैं। मदिरा पीना महापाप है। मदिरा पीनेसे बुद्धि भ्रष्ट हो जायगी और महान् नरकोंकी प्राप्ति होगी। छोटे-छोटे बच्चे भी मदिरा पीना सीख जायँगे! इसलिये अपने-अपने गाँवोंमें और घरोंमें मदिरा मत आने दो। गाँवके लोग इकट्ठे होकर निश्चय कर लें कि अपने गाँवमें मदिरा नहीं आनी चाहिये। ऋषिकेशमें एक महात्माने बताया था कि मांस खानेकी अपेक्षा भी मदिरा पीनेका अधिक पाप है। कारण कि अन्त:करणमें पुण्यके, धर्मके जो अंकुर हैं, उनको मदिरा जला देती है। मदिरा पीनेसे धार्मिक भाव नष्ट हो जाते हैं। वे आदमी दान-पुण्य कर नहीं सकते, सत्संगमें जा नहीं सकते। उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। बुद्धिके नाशसे पतन-ही-पतन होता है—'**बुद्धिनाशात्प्रणश्यति**' (गीता २। ६३)। इसलिये अपने गाँवमें मदिराकी दूकान हो तो बन्द कर दो।

***अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः। क्षेत्रदारापहर्ता च षडेते ह्याततायिनः॥**
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्। नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन॥

(वसिष्ठस्मृति ३। १९-२०)

अग्निदत्त विषदत्त नर, क्षेत्र दार धन हार। बहुरि बकारत शस्त्र गहि, अवध वध्य षटकार॥

(पांडवयशेंदुचंद्रिका १०। १७)

*** *** ***

सबसे बड़े परमात्मा हैं। परमात्माके समान भी कोई नहीं है, फिर अधिक कैसे होगा? उन परमात्माकी हम सब सन्तान हैं—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥'*** (मानस, उत्तर० ११७। १)। परन्तु मायाके वशमें होकर दुःख पा रहे हैं—***'सो मायाबस भयउ गोसाईं'*** (मानस, उत्तर० ११७। २)। अगर इस मायाको छोड़ दें तो निहाल हो जायँ! कारण कि जीवने खुद मायाको पकड़ा है, मायाने उसको नहीं पकड़ा है। जीव मायामें इतना फँस गया कि माया नष्ट हो जाय तो हार्टफेल हो जाय! धन मेरा है, सम्पत्ति मेरी है, घर मेरा है, जमीन मेरी है—इस प्रकार वह अपनेको धन, जमीन आदिका मालिक मानता है, पर वास्तवमें होता है गुलाम! अपनेको लखपति-करोड़पति कहता है, पर होता है लखदास-करोड़दास! इस गुलामीके करण वह दुःखी हुआ है। अगर यह गुलामी छोड़ दे तो माया तंग नहीं करेगी।

अगर जीव मायाके वशमें न होकर हरदम परमात्माको 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारे तो यह सुगमतासे छूट जाता है। मायासे छूटनेपर माया भी राजी हो जाती है और जीव भी राजी हो जाता है। मायाके दो काम हैं—भोग देना और मोक्ष देना। ये दोनों देकर माया कृतकृत्य हो जाती है—**'ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम्'** (योगदर्शन ४। ३२)। मायाके पास दो ही चीजें हैं—भोग और मोक्ष। अगर भोग लेते हो तो लेते ही रहो.....लेते ही रहो.....युगों-युगोंतक लेते रहो! अगर मोक्ष ले लो तो माया निहाल हो जायगी कि मेरा पिण्ड छूट गया! **जो मायाको छोड़ देते हैं, माया उनकी सेवा करती है!**

भगवान्‌को 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो तो भगवान् छुड़ा देंगे; परन्तु भीतरसे छोड़ना चाहे, तब। कोरा ऊपरसे भगवान्‌को पुकारे, पर भीतरसे भोगोंको चाहे तो भगवान् छुड़ाते नहीं; क्योंकि किसीकी मनचाही चीजको छुड़ाना भले आदमीका काम नहीं है। वह भोगोंको आफत समझे तो भगवान् छुड़ा दें, पर सुख समझे तो कैसे छुड़ायें? भले आदमी दूसरेका सुख नहीं छुड़ाते, प्रत्युत दुःख, आफत छुड़ाते हैं। आरम्भमें तो भोगोंमें सुख दीखता है, पर परिणाम बड़ा दुःखदायी होता है।

चलते-फिरते, उठते-बैठते हर समय भगवान्‌को पुकारना शुरू कर दो कि 'हे नाथ! हे प्रभो! हे स्वामिन्! इस आफतसे छुड़ाओ! हमारेसे छूटता नहीं'! पहले नकली पुकार होती है, फिर वह नकलीसे असली हो जाती है। कभी हृदयसे पुकार निकलेगी तो माया छूट जायगी। हृदयकी उस असली पुकारके लिये ही यह सत्संग है।

अगर आदमी बनावटी भी साधु हो जाय तो कितनी आफत छूट जाय, फिर असली साधु हो जाय तो आनन्दका क्या कहना! आनन्दका पार नहीं है! **जिन सन्तोंका संग करनेसे सुख होता है, जिनकी बात सुननेसे सुख होता है, अगर वैसा खुद बन जाय तो कितना सुख है!**

*** *** ***

सिद्धान्तकी बात है कि अगर वृत्ति शुद्ध रखना चाहते हो तो कंचन और कामिनी—इन दोकी महत्ताका त्याग करो। हृदयमें इनकी दासता नहीं होनी चाहिये। गृहस्थ-आश्रममें पैसा रखनेका निषेध नहीं है, पर पैसेका महत्त्व नहीं होना चाहिये। **आपके पास लाखों-करोड़ों रुपये हों तो कोई हर्ज नहीं है, पर रुपयोंकी दासता नहीं होनी चाहिये।**

अगर रुपयोंका त्याग करनेसे साधुकी प्रशंसा होती है तो यह महत्त्व रुपयोंका है, साधुका नहीं। अगर रुपयोंके त्यागसे साधु बड़ा हुआ तो वास्तवमें रुपया बड़ा हुआ, त्याग बड़ा नहीं हुआ।

जिसके भीतर भोग और संग्रह—इन दोकी इच्छा होती है, उसे सुख नहीं मिल सकता। सुख त्यागमें है—'**त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्**' (गीता १२। १२)।

आप चाहे गृहस्थ हों या साधु हों, एक भगवान्‌को अपना मान लो तो आप श्रेष्ठ बन जाओगे। मीराबाईने भगवान्‌को अपना मान लिया था—'***मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई***'। मीराबाईका न तो कोई बेटा हुआ, न कोई चेला हुआ, पर सन्तलोग भी बड़े आदरसे उनका नाम लेते हैं!

नाम नाम बिनु ना रहे, सुनो सयाने लोय।
मीरा सुत जायो नहीं, शिष्य न मुंड्यो कोय॥

*** *** ***

अभी मेरे विषयमें जो कुछ कहा गया, वह ठीक नहीं है। मैं नतमस्तक होकर कहता हूँ कि ऐसे (महिमाके) वचन मेरेको अच्छे नहीं लगते। वास्तवमें मेरी धृष्टता है कि मैं सुन रहा हूँ! आप सब लोग क्षमा करेंगे। मेरा विचार है कि जहाँतक हो, व्यक्तिकी महिमा कहना अच्छा नहीं है। यह जो हाड़-मांसका पुतला है, इसकी महिमा उचित नहीं है। परन्तु भगवान्‌की महिमा जितनी करें, उतनी थोड़ी है। उनकी महिमा पूरी होती ही नहीं। आजतकके सभी ग्रन्थ इकट्ठे कर लिये जायँ तो उनमें भगवान्‌की महिमा बहुत थोड़ी हुई है। उनकी महिमा पूरी नहीं हो सकती, अगर पूरी हो जाय तो वह परमात्मा ही नहीं है। परमात्मा अपार हैं, असीम हैं, अनन्त हैं।

व्यक्तिकी महिमा करना मैं अनुचित समझता हूँ। मैं इसके लायक नहीं हूँ। मेरेको शर्म आती है! मैं एक पारमार्थिक बातमें चलनेकी चेष्टा कर रहा हूँ; तात्त्विक बातें मेरेको अच्छी लगती हैं; इस मार्गमें आगे बढ़ना चाहता हूँ—यह बात तो सच्ची है; परन्तु मैं महिमाके लायक नहीं हूँ। इस मार्गकी रुचि मेरे मनमें है, पर वह भी जैसी होनी चाहिये, वैसी नहीं है। मैं देखता हूँ, विचार करता हूँ तो मेरेमें बहुत-सी कमी है। कमी मैं रखना नहीं चाहता हूँ, पर अपनी शक्तिसे दूर नहीं कर सकता हूँ। भगवत्कृपासे कमी दूर होती है—यह मेरा विश्वास है। इस विश्वाससे मेरेको लाभ होता है, और आपसे भी विश्वास रखनेको कहता हूँ। जैसे, वर्षा होती है तो मैंने उसे समुद्रपर भी बरसते देखा है, काँटेवाले और विषैले वृक्षोंपर भी बरसते देखा है। भगवान्‌की कृपा भी सम्पूर्ण जीवोंपर ऐसे ही बरसती है। वह पात्र-अपात्र नहीं देखती। उस कृपासे असम्भव बात भी सम्भव हो जाती है।

मैं सबसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि ऐसी (मेरी प्रशंसाकी) बात मेरेको न सुनायें। मेरेको अच्छी नहीं लगती।

*** *** ***

परमात्माकी प्राप्ति सुगम है, पर केवल परमात्माकी चाहना हो तब। दूसरी चाहना रहनेपर परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती; क्योंकि परमात्माके समान कोई है ही नहीं। जैसे परमात्मा अद्वितीय हैं, ऐसे ही परमात्माकी चाहना भी अद्वितीय होनी चाहिये। केवल इच्छासे परमात्मा ही मिलते हैं, और कोई चीज नहीं मिलती। कारण कि परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही मनुष्यशरीर मिला है। संसारमें बिना उद्योगके, बिना प्रारब्धके कोई वस्तु नहीं मिलती। सांसारिक धन आदि चाहते हैं तो उसमें घाटा भी पड़ जाता है, पर परमात्माकी प्राप्तिमें घाटा कभी पड़ता ही नहीं। परमात्मा सब जगह हैं, पर रुपया सब जगह नहीं है। सूईकी तीखी नोक-जितनी जगह भी भगवान्‌से खाली नहीं है। कर्मोंसे अथवा प्रारब्धसे नाशवान् चीज मिलती है, पर परमात्मा प्रारब्धसे अथवा कर्मोंसे नहीं मिलते। परमात्मा केवल इच्छामात्रसे मिलते हैं। उनकी प्राप्तिमें पढ़ाई-लिखाईकी, बुद्धिमानीकी आवश्यकता नहीं है। केवल उनके सिवाय कोई

भी चाहना न हो, न जीनेकी, न मरनेकी, न भोगोंकी, न संग्रहकी। एक परमात्माकी प्राप्तिकी चाहना हो तो वे जरूर मिलते हैं, एकदम सच्ची बात है!

परमात्मा सबके हृदयमें रहते हैं—'**सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः**' (गीता १५। १५)। वे आपसे दूर नहीं हैं। आप नरकोंमें जाओगे तो भी आपके हृदयमें भगवान् रहेंगे। चौरासी लाख योनियोंमें जाओगे तो भी भगवान् आपके हृदयमें रहेंगे। आप पशु-पक्षी बनोगे तो भी भगवान् आपके हृदयमें रहेंगे। वृक्ष बनोगे तो भी भगवान् आपके हृदयमें रहेंगे। देवता बनोगे तो भी भगवान् आपके हृदयमें रहेंगे। तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त बनोगे तो भी भगवान् आपके हृदयमें रहेंगे। जो सबके हृदयमें रहता है, उसकी प्राप्ति दुर्लभ कैसे? परन्तु दूसरी इच्छाएँ रहते हुए वे नहीं मिलते।

जिस दिन आपका विचार हो जायगा कि भगवान्‌के बिना मैं रह नहीं सकता तो भगवान् भी आपके बिना रह नहीं सकेंगे। एक मच्छर गरुड़जीसे मिलना चाहे और गरुड़जी मच्छरसे मिलना चाहें तो मच्छरसे मिलनेमें गरुड़की ताकत काम करेगी और वे यहीं उसे मिल जायँगे। मच्छरमें उड़नेकी कितनी ताकत है? इसी तरह **भगवान्‌से मिलनेकी इच्छा हो तो आपसे मिलनेमें भगवान्‌की ताकत काम करेगी, आपकी ताकत काम नहीं करेगी।** आप विचार करो, आप भगवान्‌के पास नहीं पहुँच सकते तो क्या भगवान् भी आपके पास नहीं पहुँच सकते? वे तो आपके हृदयमें विराजमान हैं! **भगवान्‌को आप दूर मानते हो, इसलिये भगवान् दूर होते हैं।** आप मानोगे कि भगवान् मेरेको नहीं मिलेंगे तो वे नहीं मिलेंगे।

आपको गोरखपुरकी एक घटना सुनायें। संवत् २००० से पहलेकी बात है। मैंने एक दिन व्याख्यानमें कह दिया कि आपका विचार हो जाय कि भगवान् आज मिलेंगे तो वे आज ही मिल जायँगे। एक बैंकमें काम करनेवाले सज्जन थे, नाम था—सेवारामजी। उनको यह बात लग गयी! वे माला ले आये, चन्दन घिस लिया कि भगवान् आयेंगे तो माला पहनाऊँगा, चन्दन लगाऊँगा। भगवान्‌के आनेकी प्रतीक्षामें बैठ गये। भगवान्‌के आनेकी उम्मीद भी हो गयी, सुगन्ध भी आने लगी, पर भगवान् आये नहीं। दूसरे दिन उन्होंने मेरेको कहा आज हमारे घर भिक्षा लो। मैं कई घरोंसे भिक्षा लेकर पाता था। उनके घर गया तो उन्होंने मेरेसे पूछा कि बात क्या है, भगवान् आये क्यों नहीं? मैंने उनसे पूछा कि सच्चे हृदयसे बताओ कि तुम्हारे मनमें 'भगवान् इतनी जल्दी कैसे मिलेंगे'—यह बात आती थी कि नहीं? उन्होंने कहा कि यह बात तो आती थी। मैंने कहा कि इसी बातने अटकाया! अगर यह बात होती कि मेरेको तो भगवान् मिलेंगे ही, मिलना ही पड़ेगा तो बिल्कुल मिलते। अतः यह बाधा तुम्हारी ही लगायी हुई है! क्या भगवान्‌को भी मिलनेमें देरी लगती है? क्या भगवान्‌को भी उद्योग करना पड़ता है?

आज भी किसीके मनमें भगवान्‌से मिलनेका विचार हो तो आज विचार कर लो, आज ही मिल जायँगे! रात्रिमें बैठ जाओ कि भगवान् मिलेंगे। परन्तु आपके मनमें यह छाया नहीं आनी चाहिये कि इतनी जल्दी कैसे मिलेंगे? फिर दुनिया कुछ भी कहे, कोई परवाह नहीं! भगवान् आपके कर्मोंसे अटकते नहीं। आपके पापोंसे, दुष्कर्मोंसे भगवान् अटक जायँ तो मिलकर भी क्या निहाल करेंगे! ऐसी कोई शक्ति है ही नहीं, जो आपको भगवान्‌से न मिलने दे! कोई भाई-बहन कैसा ही क्यों न हो, जोरदार इच्छा हो जाय तो भगवान् मिलेंगे, मिलेंगे, मिलेंगे! जरूर मिलेंगे! भगवान्‌को मिलना ही पड़ेगा! परन्तु आपके भीतर यह बात नहीं रहनी चाहिये कि इतनी जल्दी भगवान् नहीं मिलते। यह बात रहेगी तो भगवान् अटक जायँगे!

अगर हमारे पापोंके कारण भगवान् न मिलते हों तो हमारे पाप भगवान्‌से बलवान् हुए। अगर

पाप बलवान् हुए तो भगवान् मिलकर क्या निहाल करेंगे! भगवान् इतने निर्बल नहीं हैं कि पापकर्मोंसे अटक जायँ। उनके समान बलवान् कोई है ही नहीं, हुआ ही नहीं, होगा ही नहीं, हो सकता ही नहीं। ऐसे भगवान् हमारेको क्यों नहीं मिलते? क्योंकि हम उन्हें चाहते नहीं। हमारे भीतर रुपयोंकी चाहना है, फिर भगवान् बीचमें क्यों आयेंगे? मानो भगवान् कहते हैं कि अगर मेरे बिना तेरा काम चलता है तो मेरा काम भी तेरे बिना चलता है!

आप संसारके लिये रोओ तो भी संसार राजी नहीं होगा, पर भगवान्‌के लिये व्याकुल हो जाओ तो भगवान् व्याकुल हो जायँगे! जितना सत्संग करोगे, विचार करोगे, उतना फायदा जरूर होगा—इसमें सन्देह नहीं है; परन्तु परमात्माकी प्राप्ति जल्दी नहीं होगी! कई जन्म लग जायँगे, तब होगी! **केवल परमात्मप्राप्तिकी जोरदार इच्छा हो जाय तो भगवान्‌को आना ही पड़ेगा.....आना ही पड़ेगा! किसीकी ताकत नहीं कि भगवान्‌को रोक दे!** भगवान् कहते हैं कि जो जैसा मेरा भजन करते हैं, मैं भी उनका वैसा ही भजन करता हूँ—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** (गीता ४। ११)। जो मेरे बिना रो पड़ता है, उसके बिना मैं भी रो पड़ता हूँ!

*** *** ***

संसारकी प्राप्तिमें तो क्रिया और पदार्थ मुख्य हैं, पर भगवान्‌की प्राप्तिमें भगवान्‌का आश्रय और चुप रहना (कुछ न करना) मुख्य हैं। भगवान्‌का आश्रय लेकर, उनके चरणोंमें पड़कर कुछ भी चिन्तन न करे। अगर नींद अथवा आलस्य आये तो चुप साधन न करें, प्रत्युत कीर्तन करें, भगवान्‌का नाम लें।

भगवान्‌के चरणोंका आश्रय लेकर उसीमें तल्लीन हो जायँ। कुछ भी चिन्तन न करें—**'आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्'** (गीता ६। २५)। यह परमात्माकी प्राप्तिका बहुत सुगम तथा बढ़िया साधन है। नित्य-निरन्तर भगवान्‌के चरणोंमें बने रहें। जो तत्परतासे साधन करता है, जिसकी परमात्मप्राप्तिकी नीयत है, उसके सब पाप चुप, स्थगित हो जाते हैं; जैसे—कोई कर्जदार आदमी किसी बड़े सेठ, राजा-महाराजाके शरण हो जाय तो सब लेनदार चुप हो जाते हैं कि अब यह सब चुका देगा। भगवान्‌ने कहा है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

'सम्पूर्ण धर्मोंका आश्रय छोड़कर तू केवल मेरी शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, चिन्ता मत कर।'

'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' कहकर भगवान्‌के चरणोंकी शरण हो जायँ तो सब पाप स्थगित हो जायँगे। 'हे नाथ! हे नाथ!' करो और कुछ भी चिन्तन मत करो। संसारका चिन्तन हो जाय तो भगवान्‌का चिन्तन करो, नहीं तो कुछ भी चिन्तन मत करो। भगवान्‌का चिन्तन करनेसे भगवान्‌से दूर होते हैं। चिन्तन न करें तो परमात्मामें ही स्थिति होती है।

*** *** ***

गीतामें आया है—

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥

(गीता ३। ३४)

'इन्द्रिय-इन्द्रियके अर्थमें अर्थात् प्रत्येक इन्द्रियके प्रत्येक विषयमें मनुष्यके राग और द्वेष व्यवस्थासे (अनुकूलता और प्रतिकूलताको लेकर) स्थित हैं। मनुष्यको उन दोनोंके वशमें नहीं होना चाहिये; क्योंकि वे दोनों ही इसके (पारमार्थिक मार्गमें) विघ्न डालनेवाले शत्रु हैं।'

जिसमें सुख दीखता है, उसमें राग हो जाता है और जिसमें दुःख दीखता है, उसमें द्वेष हो जाता है। राग-द्वेष रहते हुए कर्तव्यका पालन नहीं होता। इसलिये साधकको अपनी तरफसे समता रखते हुए कर्तव्यका पालन करना चाहिये। 'राग' से ममता, आसक्ति आदि और 'द्वेष' से क्रोध आदि अनेक दोष पैदा होते हैं। इसलिये भगवान्‌ने अपने कर्तव्यका पालन करनेमें राग-द्वेषके वशीभूत न होनेकी आज्ञा दी है।

अब प्रश्न होता है कि राग-द्वेषका नाश कैसे हो? इसका उपाय यह है कि राग-द्वेषके वशीभूत होकर काम न करे। जैसे अच्छी खुराक देनेसे पहलवान पुष्ट होता है, ऐसे ही राग-द्वेषके अनुसार कार्य करनेसे राग-द्वेष पुष्ट होते हैं। राग-द्वेष अनुकूलता-प्रतिकूलताको लेकर होते हैं, इसलिये अनुकूलता-प्रतिकूलतामें सम रहे। समतामें रहकर काम करे। पहले यह देखें कि आपका उद्देश्य मुक्त होना है या संसारमें फँसना है? अगर आपका उद्देश्य संसारमें फँसना है तो राग-द्वेष नहीं छूटेंगे। अगर आपको अपना कल्याण करना है तो राग-द्वेषके वशीभूत न होकर उसपर विजय प्राप्त करनी चाहिये। स्वार्थभाव होनेसे ही राग-द्वेष रहते हैं। अतः राग-द्वेषपर विजय प्राप्त करनेका उपाय है—अपने स्वार्थका त्याग और दूसरेके हितका ध्येय। सबके साथ व्यवहार करते हुए यह विचार रखें कि सब-के-सब सुखी हो जायँ, सब-के-सब नीरोग हो जायँ, सबके यहाँ आनन्द-मंगल हो, किसीको किंचिन्मात्र भी दुःख न हो—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

इस प्रकार अपने स्वार्थका त्याग करके सबके हितकी तरफ दृष्टि रखनेसे राग-द्वेष नहीं रहते।

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

(मानस, उत्तर० ४१। १)

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

(मानस, अरण्य० ३१। ५)

एक सुख होता है, एक हित होता है। दूसरेके हितकी दृष्टि हो, सुखकी दृष्टि नहीं। हितकी दृष्टि लम्बी होती है, पर सुख तात्कालिक होता है। हित करनेकी अपेक्षा भी अहित न करना व्यापक है, मूल्यवान् है। हित करना सीमित होता है, पर अहित न करना असीम होता है। हित करनेमें तो खर्चा भी होता है और परिश्रम भी होता है, पर अहित न करनेमें खर्चा भी नहीं होता और परिश्रम भी नहीं होता। निष्कामभाव होनेसे अपना हित होता है।

एक प्रवृत्तिरूप साधन होता है, एक निवृत्तिरूप साधन होता है। निवृत्तिरूप साधन तेज होता है; क्योंकि हमें संसारमात्रकी निवृत्ति ही करनी है। सब संसारसे निवृत्ति होगी, तब राग-द्वेष मिटेंगे तथा परमात्माकी प्राप्ति होगी।

अभ्याससे राग-द्वेष नहीं मिटते। अभ्यास करनेसे फायदा तो होगा, पर सीमित फायदा होगा। अभ्यास न करके अपने स्वार्थका त्याग तथा दूसरेके हितका भाव होगा तो राग-द्वेष मिट जायँगे।

अभ्यासमें वस्तुओंकी आवश्यकता होती है। वस्तुओंकी आवश्यकता होनेसे राग होता है। परन्तु किसीके भी अहितका भाव न होनेमें वस्तुओंकी आवश्यकता नहीं होती।

*** *** ***

रचना अपने रचयिताको नहीं जान सकती। सबके रचयिता परमात्माको न जाननेके कारण आज लोगोंमें यह वहम हो गया है कि हम जो करते हैं, ठीक करते हैं। परमात्मामें अपार, असीम शक्ति है। संसारका सब कार्य ठीक करनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और महेश—तीनोंकी रचना की गयी है। इतनेपर भी चिन्ता करते हैं कि मनुष्य ज्यादा हो जायँगे, कम करो! यह (परिवार-नियोजन) मनुष्यका कर्तव्य ही नहीं है। यह मनुष्यकी अनधिकार चेष्टा है। परिवार-नियोजनकी बात किसी इतिहासमें नहीं आती। क्या बुद्धिमान् आदमी अभी पैदा हुए हैं। क्या पहले कोई बुद्धिमान् पैदा ही नहीं हुआ? गायोंको मार देना और मनुष्योंको पैदा नहीं होने देना—यह बड़ा भारी अन्याय है! इसका नतीजा बहुत बुरा होगा! **मैं भविष्यको जानता नहीं हूँ, पर चाल ऐसी दीखती है कि बहुत अहित होगा, मारकाट होगी! शान्तिसे रह नहीं सकोगे! बड़ी दुर्दशा होगी!**

लोगोंकी प्रवृत्ति पाप करनेकी तरफ जोरोंसे हो रही है। मातृशक्तिका सबसे अधिक आदर होना चाहिये, पर आज इसका महान् तिरस्कार हो रहा है। लड़कियोंको जन्मने ही नहीं देते! लड़कियाँ नहीं होंगी तो विवाह किससे होगा? सृष्टि कैसे चलेगी? सन्तान नहीं चाहते हो तो संयम रखो। संयम न रखकर शरीरका भी नाश कर रहे हो। लड़के-लड़कियोंके भीतर ऐसी भावना हो गयी है कि पहले पाँच-सात वर्षतक भोग भोग लो, पीछे सन्तान पैदा हो। परन्तु पीछे होनेवाली सन्तान कमजोर होगी। पहले होनेवाली सन्तान बलवान् होती है। पीछे होनेवाली सन्तान नाश करनेवाली होगी। उनमें बुद्धि तेज नहीं होगी। वृक्षोंमें पहले बड़े-बड़े फल लगते हैं। फिर वह ज्यों पुराना होता है, त्यों फल भी कमजोर, छोटे-छोटे लगने लगते हैं।

भगवान्‌को याद करो, भगवान्‌का भजन करो, जिससे आपकी बुद्धि शुद्ध हो जाय। बुद्धि शुद्ध, निर्मल होगी तो आपके हृदयमें अच्छी बातें पैदा होंगी। अच्छी बातोंकी तरफ आपका ध्यान जायगा। संसारमें रचे-पचे आदमियोंकी बुद्धि शुद्ध नहीं होती। भोगोंमें लगे हुए आदमियोंकी बुद्धि मारी जाती है। इसलिये हर समय भगवान्‌को 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। चलते-फिरते, उठते-बैठते भगवान्‌को याद करो। '**हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्**' (श्रीमद्भा० ८। १०। ५५)—भगवान्‌को याद करनेसे सम्पूर्ण विपत्तियोंका नाश होता है, सब पाप नष्ट होते हैं, सब विलक्षण दैवी शक्तियाँ पैदा होती हैं! भगवान्‌की विस्मृति महान् पतन करनेवाली है।

*** *** ***

मनुष्यमें जो सेवा करनेकी, सबको सुख पहुँचानेकी शक्ति है, वह देवताओंमें भी नहीं है। वह मनुष्योंको भी तृप्त करता है और भगवान्‌को भी तृप्त करता है, उनकी भी भूख मिटाता है! भगवान् प्रेमभावके भूखे हैं। इसलिये भगवान्‌के दरबारमें ऊँचे-से-ऊँचे मनुष्य हैं! मनुष्यमें यह शक्ति भी भगवान्‌की दी हुई है, उसकी खुदकी नहीं है। मनुष्यको शक्ति देकर भगवान् खुद छोटे बन जाते हैं—'***मैं तो हूँ भगतन को दास, भगत मेरे मुकुटमणि***'! परन्तु भक्त अपनेको बड़ा नहीं मानता। भक्त भगवान्‌का भक्त होता है और भगवान् भक्तके भक्त होते हैं! भगवान् 'भक्तभक्तिमान्' हैं—'**एवं स्वभक्तयो राजन् भगवान् भक्तभक्तिमान्**' (श्रीमद्भा० १०। ८६। ५९)। हरेक आदमी दूसरेको चेला बनाता है, पर भगवान् गुरु बनाते हैं! यह भगवान्‌की उदारता है कि दूसरेको सब कुछ देकर भी उसे अपने अधीन नहीं बनाते, प्रत्युत मालिक बनाते हैं।

भगवान् कहते हैं कि भक्त ऊँचे हैं, भक्तोंकी भक्ति करो, उनकी शरणमें जाओ और भक्त कहते हैं कि भगवान्‌की शरणमें जाओ, पर भीतरसे दोनों एक हैं! यह ठगाईकी रीति है! भीतरसे दोनों एक हैं, पर बाहरसे दूकानें दो हैं। वह कहता है कि उस दूकानमें जाओ, वह दूकान अच्छी है और यह कहता है कि उस दूकानमें जाओ, वह दूकान अच्छी है! भीतरसे दोनों दूकानें अपनी हैं!

जैसे माँको बच्चा प्यारा होता है, ऐसे ही भगवान्‌को भक्त बड़ा प्यारा होता है। भक्तको देखकर भगवान् प्रसन्न होते हैं! वे भक्तको छिप-छिपकर देखते हैं—***'प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई'*** (मानस, अरण्य० १०। ७)! दुनियाको आनन्द भगवान् देते हैं, पर भगवान्‌को आनन्द भक्त देता है!

*** *** ***

परमात्माकी प्राप्ति चाहनेवालोंके लिये बहुत ही सुगम मार्ग है कि हम जो भी काम कर रहे हैं, भगवान्‌का काम कर रहे हैं। भगवान् कहते हैं—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥

(गीता ९। २७-२८)

'हे कुन्तीपुत्र! तू जो कुछ करता है, जो कुछ भोजन करता है, जो कुछ यज्ञ करता है, जो कुछ दान देता है और जो कुछ तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर दे। इस प्रकार मेरे अर्पण करनेसे कर्मबन्धनसे और शुभ (विहित) और अशुभ (निषिद्ध) सम्पूर्ण कर्मोंके फलोंसे तू मुक्त हो जायगा। ऐसे अपने-सहित सब कुछ मेरे अर्पण करनेवाला और सबसे सर्वथा मुक्त हुआ तू मुझे ही प्राप्त हो जायगा।'

भगवान्‌का काम करते ही आपकी अशुद्धि चली जायगी और शुद्धि आ जायगी। आप स्वतः-स्वाभाविक पवित्र हो जाओगे। आपके द्वारा कोई निषिद्ध काम नहीं होगा। आपका हरेक काम भजन हो जायगा। **मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान्‌का काम करता हूँ—यह ध्यानसे भी ऊँची चीज है!** कारण कि यह करणनिरपेक्ष है। ध्यानमें मन लगाते हैं, इसलिये वह करणसापेक्ष है। करणसापेक्षवाला साधक योगभ्रष्ट हो सकता है, पर करणनिरपेक्षवाला साधक योगभ्रष्ट नहीं हो सकता। **हमारा मन भगवान्‌में लगा तो हमारे और भगवान्‌के बीचमें मन आ गया!** हमारा भगवान्‌के साथ सीधा सम्बन्ध हो तो यह करणनिरपेक्ष है, पर बीचमें मन-बुद्धि आ जायँगे तो यह करणसापेक्ष हो जायगा।

आप किसीके चेला बन जाओ तो कुछ फर्क नहीं पड़ेगा, पर भगवान्‌के हो जाओ तो आपका जीवन शुद्ध, निर्मल हो जायगा। आप इतने पवित्र हो जाओगे कि आपके दर्शनोंसे लोग पवित्र हो जायँगे! आपका सम्बन्ध, आपके वचन, आपकी हवा पवित्र करनेवाली हो जायगी! युधिष्ठिरजी महात्मा विदुरजीसे कहते हैं—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो।
तीर्थिकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता॥

(श्रीमद्भा० १। १३। १०)

'प्रभो! आप-जैसे भगवान्‌के प्यारे भक्त स्वयं ही तीर्थस्वरूप होते हैं। आपलोग अपने हृदयमें विराजमान भगवान्‌के प्रभावसे तीर्थोंको भी महातीर्थ बनाते हुए विचरण करते हैं।'

भक्तोंके चरण-स्पर्शसे अतीर्थ भी तीर्थ हो जाते हैं! लोगोंके पाप दूर करते-करते तीर्थ कलुषित

हो जाते हैं, पर भक्तोंके चरण-स्पर्शसे वे भी पवित्र हो जाते हैं।

चेला बननेसे आप पवित्र नहीं होओगे, पर भगवान्‌के हो जानेसे आप पवित्र हो जाओगे। भगवान्‌के तो आप पहलेसे हो ही, केवल आपको स्वीकार करना है। आप भगवान्‌के हो जाओ—यह असली चीज है। आप गुरुके हो जाओ—यह बनावटी चीज है। आप बनावटी चीजको मानकर असली चीजका तिरस्कार कर रहे हो! भगवान्‌ने तो आपको अपना मान ही रखा है, आप भी आज स्वीकार कर लो कि हम भगवान्‌के हैं।

*** *** ***

श्रोता—स्वरूपका बोध कैसे हो?

स्वामीजी—जो स्वरूप नहीं है, उसका त्याग कर दो तो स्वरूपका बोध हो जायगा। जड़ताका त्याग होनेपर स्वरूप-बोध हो ही जाता है। कम-से-कम 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'—इसकी भीतरसे रटन लगा दो। स्वरूपका बोध, परमात्मतत्त्वका ज्ञान, जीवन्मुक्ति आदि सब हो जायँगे! आप करके देखो, बहुत लाभ होगा। जब नींद खुले, तबसे लेकर जब गाढ़ नींद आ जाय, तबतक 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'—यह कहते ही रहो।

श्रोता—हम भगवान्‌से दूर क्यों हुए?

स्वामीजी—भगवान् अविनाशी हैं, संसार नाशवान् है। आप अविनाशीको छोड़कर नाशवान् भोग और संग्रहमें लग गये, इसलिये भगवान्‌से दूर हो गये। अगर नाशवान्‌में न लगें तो भगवान्‌की प्राप्ति हो जायगी; नहीं हो तो मेरा कान पकड़ना! आप नाशवान् चीजोंका आदर छोड़ दें। जिसका संयोग और वियोग होता है, जो मिलती और बिछुड़ती है, वह चीज आपकी होती ही नहीं। उसको आपने अपना मान लिया, इसीलिये भगवान्‌से अलग हो गये।

सर्वसमर्थ भगवान्‌में भी यह सामर्थ्य नहीं है कि आपसे अलग हो जायँ। आप ही भगवान्‌से विमुख हुए हैं।

श्रोता—अब जीवन तो समाप्त हो चला! थोड़ा-सा समय है। क्या इस समयमें हम अपना कल्याण कर सकते हैं?

स्वामीजी—जरूर कर सकते हैं। कल्याणके सिवाय हमारी कोई भी चाह न हो तो कल्याण जरूर हो जायगा। इसके लिये ज्यादा समयकी जरूरत नहीं है। भीतरका भाव कल्याणका होना चाहिये। आगे जितना समय बचा है, इसमें सिवाय भगवद्भजनके और हम कुछ नहीं करेंगे—ऐसा विचार हो जाय तो जरूर कल्याण हो जायगा।

श्रोता—संसारकी वासनाका त्याग कैसे हो?

स्वामीजी—'हे नाथ! हे मेरे नाथ! मैं त्याग कर नहीं सकता! हे प्रभो! मैं क्या करूँ!' ऐसे आठों पहर भगवान्‌को पुकारो; त्याग हो जायगा।

*** *** ***

पूजन मनुष्यका नहीं, भगवान्‌का ही होना चाहिये। आरती करनी हो तो भगवान्‌की ही करो।

एक परमात्मप्राप्तिका पक्का उद्देश्य बन जाय तो काम, क्रोध आदि सब दोष दूर हो जाते हैं। **आपको कल्याणके योग्य समझकर ही भगवान्‌ने मनुष्यशरीर दिया है।** यह अन्य योनियोंकी तरह नहीं है। अतः आपको अपने कल्याणका, परमात्मप्राप्तिका ही उद्देश्य रखना चाहिये। संसारमें कोई

अफसर किसी मनुष्यको किसी कार्यपर नियुक्त करता है तो उसकी योग्यता देखकर करता है। क्या अपढ़ आदमीको कोई हेडमास्टर बना देगा? जब मनुष्योंमें भी योग्यता देखकर ही पद दिया जाता है तो क्या भगवान् बिना योग्यताके मनुष्यजन्म दे देंगे? क्या कोई आदमी कह सकता है कि मैंने अपनी मरजीसे यहाँ जन्म लिया है? अतः आप सब-के-सब परमात्माको प्राप्त कर सकते हैं। ऐसी योग्यता आप सबमें है, तभी आपको मनुष्यशरीर मिला है।

जब आपका उद्देश्य परमात्मप्राप्तिका हो जायगा, तब काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दोष नहीं रहेंगे। सब गुण अपने-आप आ जायँगे। ये दोष तो उनमें रहते हैं, जिनका उद्देश्य संसार है। मेरी समझसे भाई-बहन प्रायः बिना उद्देश्य चलते हैं! घरसे तो निकल गये, पर कहाँ जाना है—यह विचार नहीं है तो क्या दशा होगी? किसीसे पूछें कि मार्ग बताओ। वह कहे कि कहाँका? कहींका बता दो। तो फिर कहीं चले जाओ, मार्ग बतानेकी क्या जरूरत है? अगर आपका उद्देश्य परमात्मप्राप्तिका बन जायगा तो आप तरह-तरहके कामोंमें उलझोगे नहीं। अगर उद्देश्य नहीं बनाओगे तो उलझते ही रहोगे! मैं कितना बताऊँगा! **सत्संग करनेपर भी कल्याण तभी होगा, जब आप उद्देश्य बनाओगे।** उद्देश्य बनानेपर हरेक कथा-सत्संगमें आप उलझोगे नहीं। जहाँ विशेष पारमार्थिक बात मिलेगी, वहीं सत्संग करोगे, और जगह उलझोगे नहीं। उद्देश्य बननेपर आपकी बुद्धि स्वतः शुद्ध होगी। आपको मार्ग स्वतः मिलेगा।

जब एक उद्देश्य बन जायगा कि 'मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान्‌की तरफ चलूँगा' तो यमराज आपसे डरेगा! बड़े-बड़े दोष आपसे डरेंगे! दोष स्वतः-स्वाभाविक दूर होंगे। आपपर कोई विजय नहीं कर सकेगा। भगवान् आपकी रक्षा करेंगे। जबतक एक उद्देश्य नहीं बनेगा, तबतक सब दोष आपको लूटेंगे, तंग करेंगे। मनुष्य एक राजाकी शरणमें चला जाय तो चोर-डाकू उससे डरने लगते हैं! आप भगवान्‌की शरणमें चले जाओ तो सब दोष आपसे डरेंगे। आपमें काम, क्रोध आदिको जीतनेकी ताकत आ जायगी। भगवान्‌के साथ आपको जो सम्बन्ध अच्छा मालूम दे, वह मान लो और निश्चिन्त हो जाओ।

*** *** ***

चाहे हिन्दू हो, चाहे मुसलमान हो, चाहे ईसाई हो, चाहे यहूदी हो, चाहे पारसी हो, मनुष्यमात्रका उद्देश्य परमात्मप्राप्ति करना है। उस उद्देश्यको भूल गये और भोग भोगने तथा रुपयोंका संग्रह करनेमें लग गये, इसीलिये वस्तु, व्यक्ति, समय, अधिकार आदिका दुरुपयोग हो रहा है। रुपयोंका संग्रह करनेवाला 'यक्ष' होता है—'**यक्षवित्तः पतत्यधः**' (श्रीमद्भा० ११। २३। २४) 'यक्षकी तरह धनकी रखवाली करनेवाला मनुष्य अधोगतिमें जाता है'। **एक परमात्मप्राप्तिका उद्देश्य होगा तो वस्तु, व्यक्ति, समय, अधिकार आदि सबका स्वाभाविक ही सदुपयोग होगा।** परमात्माकी प्राप्ति त्यागसे होती है। त्याग हृदयका होता है, उसमें दिखावटीपना नहीं होता। हृदयमें त्याग होगा तो सबका सदुपयोग होगा।

भोग भोगनेसे स्वभाव बिगड़ता है। वह बिगड़ा हुआ स्वभाव अनेक योनियोंमें आपके साथ जायगा और अनर्थ-ही-अनर्थ करेगा। धनका संग्रह यहीं रह जायगा। एक कौड़ी भी साथ जायगा नहीं। तात्पर्य है कि भोग भोगनेसे बिगड़ा हुआ स्वभाव तो साथ जाता है, पर धनका संग्रह साथ नहीं जाता। बिगड़े हुए स्वभाववाला आप भी दुःख पायेगा और दूसरोंको भी दुःख देगा। दुःखी आदमी ही दूसरोंको दुःख देता है। **जो सांसारिक भोगोंका लोलुप है, उसके द्वारा ही दूसरोंको दुःख पहुँचता है।** परन्तु जिसका लक्ष्य परमात्मप्राप्तिका हो जायगा, उसके द्वारा किसीको दुःख नहीं होगा। परमात्मप्राप्तिका उद्देश्य होनेसे बिना कहे, बिना जाने, बिना समझे, अपने-आप आपकी वृत्ति शुद्ध हो जायगी। परन्तु धन

कमाने और भोग भोगनेका उद्देश्य रहेगा तो पतन होगा.....होगा.....होगा ही, ब्रह्माजी भी रोक नहीं सकते!

मैं धन कमानेका निषेध नहीं करता हूँ, प्रत्युत अन्यायपूर्वक धन कमानेका निषेध करता हूँ। गृहस्थके पास धन रहना मैं अच्छा मानता हूँ। मैंने सन्तोंसे एक बात सुनी है कि *'साधुके पास कौड़ी तो साधु कौड़ीका और गृहस्थके पास कौड़ी नहीं तो गृहस्थ कौड़ीका'!* परन्तु अन्यायपूर्वक धन कमाना पतन करनेवाला है। धन साथ नहीं चलेगा, पर अन्याय साथ चलेगा।

जिसके भीतर भोग और संग्रहकी इच्छा है, उसके द्वारा सदुपयोग नहीं होगा। वह सदुपयोग भी करना चाहेगा तो दुरुपयोग जबर्दस्ती हो जायगा! जबतक काम, क्रोध और लोभ रहेंगे, तबतक आप सदुपयोग नहीं कर सकते। लोभके कारण बड़ों-बड़ोंकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। वे विचार करते हैं कि ठीक बोलें, पर ठीक नहीं बोल सकते। युधिष्ठिर सर्वश्रेष्ठ 'धीरोदात्त' नायक थे, पर राज्य-लिप्साके कारण वे भी झूठ बोल गये! श्रेष्ठ पुरुष भी जब लोभमें आ जाते हैं तो उनकी चाल बिगड़ जाती है।

*** *** ***

सबका भला चाहो और भगवान्‌को याद रखो—ये दो बातें करो तो आपका चित्त स्वतः प्रसन्न रहेगा।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष, पाखण्ड आदि कोई भी दोष आ जाय तो भीतर-ही-भीतर 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। जैसे कोई डाकू आ जाय तो चिल्लाते हैं कि हमें लूट रहे हैं, रक्षा करो! बचाओ! ऐसे ही कोई दोष आ जाय तो पुकारो कि 'हे नाथ! हे मेरे नाथ! हे मेरे प्रभो! हे मेरे स्वामी! बचाओ!'।

मैंने एक सन्तकी बात सुनी कि व्याख्यान देते समय कभी उनकी दृष्टि किसी स्त्रीपर पड़ जाती और मनमें कोई बुरा भाव पैदा होता तो वे तुरन्त खड़े हो जाते और 'चोर-चोर' चिल्लाने लगते। लोग पूछते कि महाराज, चोर कहाँ है? तो कहते कि 'चोर भाग गया; अब बैठकर सत्संग सुनो' और पुनः व्याख्यान देने बैठ जाते! ये सन्तोंकी युक्ति है!

*** *** ***

जगत्, जीव और परमात्मा—ये तीन हैं। इनमें परमात्मा तथा जीव चेतन हैं और जगत् जड़ है। परमात्मा सर्वोपरि हैं, और वे सब जगह परिपूर्ण हैं। जीवके लिये परमात्मा ही ध्येय, लक्ष्य है। इसमें जो द्वैत और अद्वैतकी बात कही जाती है, वह मत-मतान्तर है। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत और अचिन्त्यभेदाभेद—ये अलग-अलग आचार्योंके छः मत हैं। परन्तु भगवद्गीता किसी मतमें नहीं है। भगवान्‌का सिद्धान्त है कि जीवका कल्याण कैसे हो? सभी आचार्य आदरणीय हैं, पूज्य हैं, और सबका सिद्धान्त वास्तवमें जीवका कल्याण करनेका है, पर उनमें परस्पर बड़ा मतभेद है। परन्तु गीतामें किसी मतका आग्रह नहीं है। जैसे कोई एक लकीर खींचे और कहे कि इसको छुए बिना छोटी कर दो तो उसके पास उससे लम्बी लकीर खींच दो तो वह स्वतः छोटी हो जायगी। ऐसे ही गीता किसी भी मतका खण्डन नहीं करती, पर उसकी बातसे स्वतः दूसरे मतका खण्डन हो जाता है। आपलोगोंसे प्रार्थना है कि मतभेदमें आकर राग-द्वेष न करें। जो मत अच्छा लगे, उसपर ठीक तरहसे चलें तो लाभ होगा, इसमें सन्देह नहीं है।

मैंने गीताकी टीका 'साधक-संजीवनी' तथा उसके सिवाय जितनी भी पुस्तकें लिखी हैं, उनमें

किसीका भी खण्डन नहीं किया है। मैंने खण्डन-मण्डनकी दृष्टिसे नहीं लिखा है। **मैंने अपने सामने एक ही विषय रखा है कि जीवका कल्याण कैसे हो?** मेरेको यह विषय प्रिय लगता है कि सबका उद्धार कैसे हो। मत-मतान्तरसे मेरा क्या लेना-देना!

गीताका पूरा सिद्धान्त मैंने जान लिया—यह मैं नहीं कहता हूँ। गीताका ठेका मैं नहीं लेता हूँ! मैंने गीताको जैसा समझा है, वह कहता हूँ। मैंने अपनी बुद्धिका परिचय दिया है कि गीताको मैंने ऐसा समझा है।

मुक्त होनेपर भी अहंका एक सूक्ष्म संस्कार रह जाता है, जो जन्म-मरण देनेवाला तो नहीं होता, पर मतभेद करनेवाला होता है। वह अहंकार भी न रहे, तब ठीक होता है। यह बात गीताके सिद्धान्तसे मैंने समझी है और यही बात मैंने कही है। यह बात गोस्वामी तुलसीदासजीने भी लिखी है—

प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥

(मानस, उत्तर० ४९। ३)

यह प्रेम-भक्ति प्राप्त होनेपर वह सूक्ष्म अहं मिट जाता है, फिर कोई मतभेद नहीं रहता। अतः **वास्तवमें अन्तिम तत्त्व प्रेम है। ज्ञानयोग और कर्मयोग तो साधन हैं, पर प्रेम साध्य है।** यह गीताका सिद्धान्त है।

आपसे मेरा यह कहना है कि आप परमात्माके चरणोंके शरण हो जायँ—यह सर्वोपरि है। यह गीताका सर्वोपरि सिद्धान्त है। इसको गीताने सबसे अत्यन्त गोपनीय बताया है—**'सर्वगुह्यतमम्'** (गीता १८। ६४)। यह पद गीतामें एक ही बार आया है। भगवान्‌ने कहा है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

'सम्पूर्ण धर्मोंका आश्रय छोड़कर तू केवल मेरी शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, चिन्ता मत कर।'

जो भगवान्‌के चरणोंकी शरण ले लेता है, वह कहीं भी नहीं अटकता। वह सर्वथा निर्भय, निःशंक, निःशोक और निश्चिन्त हो जाता है। **कल्याणका सबसे बढ़िया रास्ता शरणागति है।** शरणागतिमें सब कुछ आ जाता है। इसलिये आप सबसे प्रेमपूर्वक, आदरपूर्वक, हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि भगवान्‌के शरण हो जायँ कि 'मैं भगवान्‌का हूँ'। जो भगवान्‌के शरण हुए हैं, उनमें बहुत विलक्षणता आयी है—ऐसा मैंने देखा है। भगवान्‌के शरणागत भक्तमें कभी किसी मतका पक्षपात नहीं होता। शरणागत होनेसे परमात्माकी प्राप्ति बड़ी सरलतासे होती है। वह शरणागति चाहे आरम्भसे ही कर लो, चाहे कर्मयोग अथवा ज्ञानयोग करके शरणागति कर लो। यह साधककी मरजी है।

*** *** ***

मनुष्यशरीर परमात्मप्राप्तिके लिये ही मिला है—इस बातको भूलो मत। यह खास बात है। मानव-जीवन तभी सफल होगा, जब परमात्माकी प्राप्ति कर लें। सदाके लिये जन्म-मरण मिट जाय, पराधीनता सर्वथा मिट जाय, सर्वथा स्वाधीन हो जायँ—इसके लिये मनुष्यजन्म मिला है। इसलिये हमारा जितना भी कार्य-कलाप है, वह भगवत्प्राप्तिसे विरुद्ध बिलकुल नहीं होना चाहिये। इसके लिये रातमें, दिनमें, सब समयमें सावधान रहो। दुःख जितना भी आ जाय, उसे प्रसन्नतासे सहना है। जैसे बहनें-माताएँ हमारे जन्मके लिये कष्ट सहती हैं, ऐसे ही हमें परमात्मप्राप्तिके लिये कष्ट सहना है। अपने कर्तव्यका

पालन करते हुए जो कष्ट सहते हैं, वह तपश्चर्या होती है। जब परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही मनुष्यशरीर मिला है तो फिर परमात्माकी प्राप्ति सुगम नहीं होगी तो क्या सुगम होगा? क्या नरकोंमें जाना सुगम होगा? परमात्माकी प्राप्ति न करके आप कितने ही बड़े धनी हो जाओ, कितनी ही जमीन-जायदादके मालिक हो जाओ, राजा-महाराजा हो जाओ, कोई कामकी चीज नहीं है! यह सब छूट जायगा। जब सब छूट जायगा तो फिर पासमें क्या रहेगा? परमात्मप्राप्तिके बिना कोई चीज कामकी नहीं है। दूल्हेके बिना बरात किस कामकी? इसलिये भाइयोंसे, बहनोंसे प्रेमपूर्वक, आदरपूर्वक यह कहना है कि एक परमात्माकी प्राप्तिका लक्ष्य कर लो। चलते-फिरते, उठते-बैठते हर समय भगवान्‌से यह प्रार्थना करते रहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। फिर सब ठीक होगा।

एक बात और है, आप भगवान्‌से सम्बन्ध जोड़ लो। यह प्रेम होनेका खास उपाय है। जबतक भगवान्‌से सम्बन्ध नहीं जोड़ोगे, तबतक प्रेमका उदय नहीं होगा। भगवान्‌को अपना मान लो, फिर सब काम ठीक हो जायगा। अच्छी बातें स्वतः-स्वाभाविक पैदा होंगी और उन बातोंका पालन भी होगा।

तपस्या करनेसे प्रेम प्राप्त नहीं होता। तपस्यासे पुण्य होता है। प्रेम पुण्यका फल नहीं है, प्रत्युत कृपाका फल है। स्त्री, पुत्र, धन, सम्पत्ति, वैभव आदि पुण्यका फल है। भगवान्‌में लगना भगवान्‌की कृपासे, सन्तोंके संगसे होता है।

*** *** ***

जिसका जीवन निर्दोष है, जिसने अपना कल्याण कर लिया है, उसके द्वारा दुनियामात्रको लाभ होता है। उपकार करनेकी उतनी महिमा नहीं है, जितनी अनुपकार न करनेकी महिमा है। आप दूसरोंकी सेवामें करोड़ रुपये खर्च करो तो उससे दुनियामात्रकी सेवा नहीं होगी, पर किसीको भी दुःख मत दो तो दुनियामात्रकी सेवा होगी! कारण कि करोड़ रुपये खर्च करनेपर भी सीमित सेवा होगी, पर किसीको दुःख न देनेसे असीम सेवा होगी। पैसा लेकर दान-पुण्य करना अच्छी बात है, पर पैसा न लेना उससे भी श्रेष्ठ है! इन बातोंको हरेक आदमी नहीं समझता!

अपनेमें त्यागकी जो महत्ता दीखती है कि मैं किसीसे पैसा नहीं लेता हूँ—यह ऊँचा त्याग नहीं है। जबतक त्याज्य वस्तुमें महत्त्वबुद्धि न हो, तबतक त्यागकी महिमा क्या हुई! महिमा भावकी है, त्याज्य वस्तुकी नहीं। जबतक भीतरमें राग है, तबतक वह वास्तविक त्याग नहीं हुआ। भीतरमें पैसोंका लोभ, महत्त्व नहीं होना चाहिये। परन्तु यह त्याग हरेककी समझमें नहीं आता।

मर जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारणे, मोही आवे लाज॥

त्यागका जितना असर पड़ता है, उतना दान-पुण्यका असर नहीं पड़ता। कारण कि दान-पुण्य करनेमें (मनमें) वस्तुओंका महत्त्व है, पर त्याग करनेमें वस्तुओंका महत्त्व नहीं है। तात्पर्य है कि अन्तःकरणमें वस्तुओंका महत्त्व न होनेसे ही त्यागका महत्त्व है। बाहरी त्यागका महत्त्व नहीं है। मनमें वस्तुओंका जो महत्त्व है, वही जन्म-मरणका कारण है।

*** *** ***

श्रोता—हरेक श्वासमें भगवान्‌की स्मृति बनी रहे, इसका क्या उपाय है?

स्वामीजी—हरेक श्वासमें राम-नामका जप करें। जैसे, श्वास लेते समय '**रा**' और छोड़ते समय '**म**' का मन-ही-मन जप करें। इसी तरह 'अजपा गायत्री' (**सोऽहम्**) का भी जप होता है। जैसे,

श्वास लेते समय '**सो**' और छोड़ते समय '**हम्**' का जप होता है। अजपा-गायत्रीका जप श्रेष्ठ माना जाता है; क्योंकि इसमें बिना जप किये स्वतः जप होता है।

श्रोता—भगवान् तो सबसे बड़े हैं, फिर भगवान्‌का नाम भगवान्‌से भी बढ़कर कैसे?

स्वामीजी—कारण कि नामजप करनेसे भगवान् भी दास बन जाते हैं, वशमें हो जाते हैं! भजन करनेवालेको भगवान् अपनेसे ऊँचा मानते हैं।

*** *** ***

परमात्माके साथ हमारा नित्य, अखण्ड, अटूट सम्बन्ध है। हम भले ही भूल जायँ, पर भगवान् नहीं भूलते। अगर भगवान् भूल जायँ तो भी सम्बन्ध नहीं टूटेगा। यह सम्बन्ध पिता-पुत्रकी तरह भी नहीं है; क्योंकि पुत्रमें पिताके साथ माँका भी अंश होता है, पर जीव स्वयं केवल परमात्माका ही अंश है—'**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५। ७)।

क्रिया और पदार्थ—इन दोनोंका केवल प्रकृतिके साथ सम्बन्ध है। इनका हमारे साथ सम्बन्ध नहीं है; क्योंकि ये दोनों आदि-अन्तवाले हैं। परन्तु परमात्माके साथ हमारा आदि-अन्तवाला सम्बन्ध नहीं है, प्रत्युत स्वतः-स्वाभाविक नित्य सम्बन्ध है। इसलिये मेरे मनमें ऐसी बात आती है कि सब भाई-बहनोंको भगवान्‌के साथ अपना सम्बन्ध मानना चाहिये। यह दृढ़तासे मानना चाहिये कि भगवान् मेरे हैं। **भगवान् हैं और वे मेरे हैं—इतना ही माननेकी जरूरत है। भगवान् कहाँ हैं, कैसे हैं, क्या करते हैं—यह जाननेकी जरूरत नहीं है।**

आपने संसारके साथ सम्बन्ध जोड़ा है, इसलिये आपके ऊपर साधन करनेकी जिम्मेवारी है। अगर संसारके साथ सम्बन्ध नहीं जोड़ो तो तो आपको साधन करनेकी जरूरत ही नहीं है। जिनके साथ सम्बन्ध जोड़ा है, उनकी सेवा करो। सेवा करो और चाहो कुछ मत तो सम्बन्ध छूट जायगा।

अगर आप कल्याण चाहते हो तो किसी भी व्यक्तिके साथ सम्बन्ध मत जोड़ो। मेरे मनमें आती है कि आप गुरुके साथ भी सम्बन्ध मत जोड़ो। पहलेके ही सम्बन्ध बहुत हैं, नया सम्बन्ध मत जोड़ो। आप कितना ही परिश्रम, उद्योग करो, संसारके साथ सम्बन्ध कभी रह सकता ही नहीं और भगवान्‌के साथ सम्बन्ध कभी छूट सकता ही नहीं। अगर अभी समझमें नहीं आये तो भी आप मान लो कि मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं। यह माननामात्र भी बहुत लाभदायक है; क्योंकि सच्ची बात है।

कोई दुःख हो, कोई सन्ताप हो, कोई संकट हो, कोई जरूरत हो, केवल भगवान्‌को याद कर लो, सब काम हो जायगा! संसारमात्रमें भगवान्‌के समान सस्ता कोई नहीं है। वे सच्चे हृदयसे केवल याद करनेमात्रसे मिल जाते हैं! उनको 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। बार-बार एक ही प्रार्थना करो कि 'हे नाथ, ऐसी कृपा करो कि मैं आपको भूलूँ नहीं'।

*** *** ***

एक खास बात है कि आप भगवान्‌के अंश हैं। इस बातको आप दृढ़तासे पकड़ लें। भाई हो या बहन हो, अच्छा हो या मन्दा हो, आचरण अच्छे हों या मन्दे हों, आप कैसे ही हों; जैसे हैं वैसे ही आप भगवान्‌के हैं। यह एकदम पक्की, सच्ची बात है। दूसरी बात यह है कि आप किसीसे सम्बन्ध मत जोड़ो। संसारका सम्बन्ध भी केवल देनेके लिये, सेवा करनेके लिये ही जोड़ो। उससे लेनेकी इच्छा बिल्कुल मत रखो। जैसे, प्याऊपर बैठा आदमी केवल यह जानता है कि हरेकको ठण्डा जल पिलाना है। जो आ जाय, उसे जल पिलाना है। वह हिन्दू है या मुसलमान है अथवा

ईसाई है, अच्छे आचरणवाला है या बुरे आचरणवाला है, कुछ नहीं देखना है। एक ही बात देखनी है कि वह प्यासा है तो उसे जल पिलाना है। केवल पानी पिलानेसे मतलब है। इसी तरह केवल सेवा करनेके लिये आप घरमें रहो। दूसरे हमारी सेवा करते हैं या नहीं करते, इस बातकी तरफ मत देखो। केवल दूसरेको सुख पहुँचाना है। सुख लेनेकी इच्छा ही बन्धन है। **किसीसे कुछ भी लेनेकी इच्छा न रखना आपकी अपनी सेवा है!**

लोगोंको कहनेकी जरूरत नहीं है, भीतरमें यह भावना बना लो कि सब सुखी हो जायँ, सबका कल्याण हो जाय, सबको परमपदकी प्राप्ति हो जाय, सबको तत्त्वज्ञान हो जाय, सब भगवान्‌के प्रेमी हो जायँ। **भीतरमें उदारता आये बिना कल्याण नहीं होगा।** उदारता आनेसे ही कर्मयोगका अनुष्ठान होता है।

शरीर-संसार निरन्तर आपसे अलग हो रहे हैं, पर भगवान् कभी आपसे अलग होते ही नहीं। आपको दीखे चाहे न दीखे, आप मानें चाहे न मानें, आप स्वीकार करें चाहे न करें, सर्वसमर्थ परमात्मामें भी आपसे अलग होनेकी शक्ति नहीं है! एक जैनी सज्जनने सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकासे प्रश्न किया कि भगवान् सर्वसमर्थ हैं तो वे अपना नाश कर सकते हैं कि नहीं? सेठजीने उत्तर दिया कि भगवान् सर्वसमर्थ तो हैं, पर पागल नहीं हैं!

*** *** ***

मेरा सभी भाई-बहनोंसे कहना है कि आप अपना लक्ष्य बना लें कि इस जीवनमें हमें क्या करना है। एक दिन सबको यहाँसे जाना पड़ेगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है, दो मत नहीं हैं। हमें कहाँ जाना है—यह लक्ष्य अभी बना लो। यहाँकी कोई भी चीज आपके साथ नहीं चलेगी। आश्चर्यकी बात है कि यहाँसे जानेके दिन नजदीक आ रहे हैं, पर आप यहाँ रहनेकी तैयारी कर रहे हो, नयी-नयी चीजोंका संग्रह कर रहे हो! पहले यह बात सोचनेकी है कि जाना कहाँ है? परन्तु इस तरफ सत्संग करनेवाले आदमियोंका भी कम ख्याल है, जो सत्संगमें नहीं आते, उनका तो कहना ही क्या है!

मैंने विचार करके देखा है, जिससे हम अपनी कोई बात पूछें, ऐसा कोई पुरुष मेरी दृष्टिमें आया नहीं! जिससे हम पूछें, सलाह लें, ऐसा पुरुष हिन्दुओंमें, मुसलमानोंमें, ईसाईयोंमें, कहीं भी हमारे देखने-सुननेमें आता नहीं! कोई-कोई भाई कहते हैं कि हमारे गुरुजी ऐसे हैं, पर वे उनकी समझमें हैं, हमारी श्रद्धा बैठती नहीं! पहले 'कल्याण' में बड़े जानकार लोगोंके लेख आते थे, पर आजकल वैसे लेख लिखनेवाले भी नहीं दीखते! विद्वत्ता भी पहले-जैसी नहीं रही। पहले-जैसे विद्वान् अब देखनेमें नहीं आते। तत्त्वकी वास्तविक बातोंको जाननेवाले, उसमें तत्परतासे समय लगानेवाले आदमी बहुत कम हैं। सत्संग करनेवाले भी गहराईसे सोचते नहीं कि तत्त्व क्या है? मैं यह बिल्कुल नहीं मानता कि आपलोग योग्य नहीं हैं, बुद्धिमान् नहीं हैं। परन्तु आप इस विषयमें सोचते ही नहीं। जिस विषयमें आपका विचार ही नहीं, लक्ष्य ही नहीं, उस विषयमें आप आगे कैसे बढ़ोगे? **तत्त्वकी बात जाननेके लिये तो बहुत-से लोग तैयार हो जायँगे, पर भीतरसे जैसी लालसा होनी चाहिये, वैसी लालसा मेरेको दीखती नहीं!**

जैसे आजकल तरह-तरहके वैज्ञानिक आविष्कार हो रहे हैं, ऐसे ही पारमार्थिक विषयमें भी आविष्कार हुए हैं, पर उनको जाननेवाले बहुत कम हैं। जाननेकी इच्छा ही नहीं है! इसलिये आपलोगोंसे प्रार्थना है कि इस विषयमें अपनी उत्कण्ठा बढ़ाओ। पहलेकी अपेक्षा आजकल भगवान् सस्ते हैं, पर जाननेवाले बहुत कम हैं! जाननेकी उत्कण्ठा ही नहीं है! आपलोग तैयार हो जाओ तो मेरा

भी उत्साह बढ़ेगा!

* * * * * * * * *

श्रोता—भगवान् दिखते नहीं, फिर उन्हें कैसे मानें?

स्वामीजी—गीता कहती है—'**वासुदेवः सर्वम्**' (गीता ७। १९) 'सब कुछ भगवान् ही हैं'। वास्तवमें भगवान्‌के सिवाय दूसरा कोई दीखता ही नहीं! किसीमें दीखनेकी ताकत ही नहीं है। आप मानते नहीं तो हम क्या करें? भगवान्‌के सिवाय आपको कोई मिलता ही नहीं, भगवान् ही मिलते हैं। इसलिये हरदम खुशी रहनी चाहिये। जब कोई प्यारा मित्र मिलता है तो मन खुश होता है। हमें हरदम ही मित्ररूपसे परमात्मा मिलते हैं! परमात्माके सिवाय और किसीमें मिलनेकी ताकत ही नहीं है! भूख लगती है तो अन्नरूपसे भगवान् आते हैं। प्यास लगती है तो जलरूपसे भगवान् आते हैं। थक जाते हो तो नींदरूपसे भगवान् आते हैं। इसे मान लो आज अभी निहाल हो जाओगे!

* * * * * * * * *

श्रोता—हमने ऐसा पढ़ा है कि द्वापरमें एक महीना साधन करनेसे जो परमात्माकी प्राप्ति होती है, वह कलियुगमें एक दिनमें साधन करनेसे हो सकती है। वह ऐसा कौन-सा साधन है, जो हम एक दिनमें करें और हमें परमात्माकी प्राप्ति हो जाय?

स्वामीजी—परमात्मा दुर्लभ नहीं हैं, उनकी प्राप्तिकी इच्छावाला आदमी दुर्लभ है। परमात्माके मिलनेमें देरी नहीं है। देरी वास्तवमें अपनी चाहनामें है। परमात्मा दूर थोड़े ही हैं! परमात्मा जितने सस्ते हैं, उतनी सस्ती कोई चीज है ही नहीं! उनकी प्राप्ति तत्काल हो सकती है, दिनकी बात तो दूर रही! परमात्मा सबके हृदयमें विराजमान हैं—'**सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः**' (गीता १५। १५)। जो हृदयमें स्थित है, उसके मिलनेमें देरी क्या लगे? अतः वास्तवमें परमात्मप्राप्तिकी इच्छा दुर्लभ है, परमात्मा दुर्लभ नहीं हैं। उनकी इच्छा अनन्य होनी चाहिये।

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास॥

(दोहावली २७७)

आपमेंसे कोई है तो बताये कि हमारा एक ही भरोसा है, एक ही आशा है, एक ही विश्वास है? वास्तवमें ऐसी इच्छा ही दुर्लभ है, परमात्मा दुर्लभ नहीं हैं। परमात्माके समान सर्वव्यापक दूसरी कोई चीज है ही नहीं। उनकी प्राप्ति एक दिनमें क्या, एक क्षणमें हो सकती है! परन्तु आपलोगोंकी दृष्टि भोग तथा संग्रहकी तरफ है, परमात्माकी तरफ नहीं। आपमेंसे कोई बताओ कि परमात्माके सिवाय हमारी और कोई इच्छा नहीं है। परमात्मप्राप्तिकी जोरदार इच्छा नहीं है, हो जाय तो अच्छी बात है! भगवान्‌के बिना हमारा कोई काम अटकता है नहीं! खा-पी लेते हैं, नींद आ जाती है, भगवान्‌की जरूरत क्या है?

परमात्मासे नजदीक कोई चीज है ही नहीं! परमात्मा जितने नजदीक हैं, उतना नजदीक आपका शरीर भी नहीं है, प्राण भी नहीं हैं, मन-बुद्धि भी नहीं हैं! जो परमात्मा कभी मिलेंगे, वे अब भी मिले हुए ही हैं। जो कभी आपसे अलग होगा, वह अब भी अलग ही है। शरीर निरन्तर आपसे अलग हो रहा है। जितनी उम्र बीत गयी, उतने आप शरीरसे अलग हो गये। क्या अब बालकपना पुनः आयेगा? क्या बीते दिन पुनः आयेंगे? कलका दिन भी क्या अब पुनः आयेगा? संसार तो गंगाजीके प्रवाहकी तरह निरन्तर बह रहा है, फिर वह मिलेगा कैसे? आज दिनतक संसार किसीको

कभी मिला नहीं और न कभी किसीको मिलेगा। परन्तु परमात्मा आपसे कभी अलग हुए नहीं, अलग हो सकते नहीं। केवल उनसे दूरीका वहम है।

परमात्मा भी मौजूद हैं और आप भी मौजूद हैं, फिर देरी किस बातकी? केवल चाहनाकी कमी है।

मेरा कुछ नहीं है और मेरेको कुछ नहीं चाहिये—ये दो बातें मान लो तो परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी।

सबसे प्रेम करो। प्रेमसे ही बोलो, प्रेमसे ही सुनो, प्रेमसे ही देखो, प्रेमसे ही सबके हितकी बात सोचो। इससे कामनाका नाश हो जायगा। ऐसा प्रेम नहीं कर सको तो भगवान्‌का आश्रय लो और (अपने लिये) कुछ मत करो। क्रिया-रहित हो जाओ। कुछ न करनेसे परमात्मतत्त्व प्राप्त हो जायगा। करनेसे प्रकृतिमें स्थिति होती है। कुछ नहीं करोगे तो परमात्मामें ही स्थिति होगी। मनसे, वाणीसे, शरीरसे कुछ करना नहीं है।

जहाँ आप अपनेको मानते हो, परमात्मा उससे (मैं-पनसे) भी नजदीक हैं। उसकी प्राप्तिका सुगम उपाय है—कुछ मत करो। अभी थोड़ी देरके लिये भी क्रियारहित (चुप) हो जाओ तो आपको शान्ति मिलेगी। इसके लिये आपको उपाय बताता हूँ। नासिकासे चार-पाँच बार जोरसे श्वास बाहर निकालकर ठहर जाओ। फिर उस स्थितिमें जितनी देर ठहर सको, उतना ठहरकर धीरे-धीरे श्वास लेना शुरू करो। दूसरा उपाय, कुछ देरतक आँखोंकी पलकोंको बार-बार झपकाओ। इससे संकल्प-विकल्प कट जाते हैं। श्वास और आँखकी इन दोनों क्रियाओंको करो तो तत्काल शान्ति मिलेगी। तीसरी बात, सब जगह एक 'है'—ऐसा करके चुप हो जाओ। कुछ भी चिन्तन मत करो। सब जगह परिपूर्ण 'है' को पकड़ लो। इसे करोगे तो बड़ा भारी लाभ होगा। बात यह है कि आप पूछ लेते हैं, सुन लेते हैं, पर करते नहीं! इसे करके देखो। यह बहुत उत्तम, बढ़िया साधन है! इसे करनेके लिये किसी चीजकी जरूरत नहीं। करना यह है कि कुछ मत करो। जिससे देश, काल आदिकी दूरी हो, वह क्रियासे मिलता है। जो सब जगह परिपूर्ण है, वह क्रियासे नहीं मिलता। जो 'है', वही मेरा है।

इस साधनको करनेके लिये किसी दूसरे (गुरु)-की आवश्यकता नहीं है। इससे सुगम साधन बतानेवाला कोई मिलेगा नहीं! गुरुके नामपर केवल ठगाई होती है!

*** *** ***

कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग तीनों योगोंका सार है—अहंता-ममताका त्याग। अहंता और ममतासे रहित होनेपर ही प्रकृतिसे सम्बन्ध-विच्छेद होता है तथा परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है। मैं-मेरापनका त्याग ही वास्तवमें त्याग है। अहंकार छोड़नेमें बड़ी कठिनता पड़ती है। कोई भी साधन करें तो अहंकार साथमें रहता है। मैं-पनसे प्रकृतिके साथ अभेदपूर्वक सम्बन्ध होता है, और मेरा-पनसे प्रकृतिके साथ भेदपूर्वक सम्बन्ध होता है। 'है' में स्थित होनेसे मैं-पन और मेरा-पन दोनों मिट जाते हैं। जो है, वह परमात्मा है और जो नहीं है, वह प्रकृति व उसका कार्य है—'**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः**' (गीता २। १६)। जो प्रकृतिसे रहित है, उस 'है' में बड़ी सुगमतासे स्थिति हो सकती है।

प्रकृति कभी क्रियारहित होती ही नहीं। प्रकृति तथा उसके कार्यमें निरन्तर क्रिया होती है, पर परमात्मा सर्वथा क्रियारहित है। प्रकृति अस्वाभाविक है, पर परमात्मा स्वाभाविक है। मैं-मेरापन प्रकृतिका

विभाग है। उस परमात्माकी प्राप्तिमें क्रिया और पदार्थ कारण नहीं हैं। क्रिया और पदार्थसे रहित होते ही परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। क्रिया और पदार्थ परमात्मप्राप्तिमें बाधक हैं। यह जरा गहरी बात है! इसलिये आप 'है' को पकड़ें। 'है' में स्थित हो गये तो आप परमात्मामें स्थित हो गये। उस 'है' को पकड़नेके लिये आप निष्क्रिय हो जायँ। वास्तवमें उस 'है' में मात्र प्राणियोंकी स्वत:सिद्ध स्थिति है, पर उधर ध्यान नहीं है।

प्रत्येक क्रिया 'है' से अर्थात् अक्रियतासे पैदा होती है। वह 'है' स्वत:-स्वाभाविक है। वह कृत्रिम, बनावटी नहीं है। उसमें अहंकार नहीं है। सभी संकल्प 'है' से पैदा होते हैं। प्रत्येक कार्यका आरम्भ 'है' से होता है और कार्य समाप्त होनेपर 'है' ही रहता है। अत 'है' सबके मूलमें है। 'है' अखण्ड रहता है। क्रियाके समय भी 'है' रहता है। परन्तु हमारा ध्यान क्रियाकी तरफ रहता है, 'है' की तरफ नहीं। वह 'है' साक्षात् परमात्माका स्वरूप है। इस बातको हृदयमें जमा लो।

आप हरदम शान्त रहनेका स्वभाव बना लो। काम-धन्धा किया, फिर शान्त! संकल्प उठा, फिर शान्त! सुननेसे पहले शान्त और सुननेके बाद फिर शान्त! सुननेसे पहले शान्त होनेसे आपको सुननेकी शक्ति मिलेगी और सुननेके बाद शान्त होनेसे सुनी हुई बात तत्त्वसे समझमें आयेगी। शान्त रहनेका स्वभाव बना लोगे तो आपकी स्थिति परमात्मामें हो जायगी। गलती यह होती है कि जल्दी-जल्दी एकके बाद दूसरा काम करनेसे बीचमें शान्तिका अनुभव नहीं होता। जैसे, झूला झूलता है तो आगे-पीछे जाते समय वह समता (सम स्थिति)-में आता ही है अर्थात् जहाँसे झूलेकी रस्सी बँधी है, उसकी सीधमें एक बार आता ही है। इसी तरह प्रत्येक क्रिया करते समय समता (अक्रिय अवस्था) आती ही है। परन्तु उस समताका पता नहीं चलता, उस तरफ ख्याल नहीं जाता। तात्पर्य है कि झूलेकी तरह निरन्तर क्रियामें लगे रहनेसे परमात्मामें स्थिति होते हुए भी आपको इसका अनुभव नहीं होता।

शान्ति स्वत:सिद्ध है। अगर मनको एकाग्र करोगे, ध्यानमें लगाओगे तो आपको उद्योग करना पड़ेगा। उद्योग करनेसे क्रिया और पदार्थके साथ सम्बन्ध होगा। क्रिया और पदार्थके साथ सम्बन्ध होनेसे आप प्रकृतिमें ही रहोगे। 'मैं शान्त रहूँगा, मैं क्रिया नहीं करूँगा, मैं चिन्तन नहीं करूँगा'—यह भाव रहेगा तो अहंकार आयेगा। अहंकार आयेगा तो प्रकृतिके साथ सम्बन्ध होगा। इसलिये आप 'है' को पकड़ लो। उसमें आपकी स्थिति स्वत:-स्वाभाविक है। वह 'है' परमात्मा है और आप सब उसके अंश हो। इसलिये आपमें समता स्वाभाविक है। समता करोगे तो अहंकार, कर्तृत्वाभिमान आयेगा।

प्रत्येक क्रिया 'है'-पनेसे ही आरम्भ होती है और 'है'-पनेमें ही लीन होती है—ऐसा समझकर आप 'है' में स्थित हो जाओ। फिर 'है'-पना नित्य रहेगा, क्रिया नित्य नहीं रहेगी। क्रियामें थकावट होती है, पर 'है' में थकावट होती ही नहीं।

बोलनेमें दो आदमी भी बराबर नहीं होते, पर नहीं बोलनेमें सब एक होते हैं। विद्वान्-से-विद्वान् हो अथवा मूर्ख-से-मूर्ख हो, न बोलनेमें उनमें क्या फर्क है? क्रियारहित अवस्था सबकी अवस्था है। इसलिये आप सब कामोंके बिना रह सकते हो, पर नींदके बिना नहीं रह सकते; क्योंकि नींदमें ही आपको विश्राम मिलता है। नींद लेनेसे आपको काम करनेकी शक्ति मिलती है। अत: निष्क्रिय होनेसे शक्तिका संचय होता है और क्रियासे शक्ति क्षीण होती है। **करनेकी, जाननेकी, समझनेकी, अनेक आविष्कारोंकी, विज्ञानकी, जितनी भी शक्तियाँ हैं, वे सब-की-सब शक्तियाँ निष्क्रिय-तत्त्वमें हैं और उसीसे पैदा होती हैं।**

आप सब 'है' में स्थित हो जायँ। **परमात्मा कैसे हैं, कहाँ रहते हैं, क्या करते हैं, किधर देखते हैं, क्या खाते हैं, क्या पीते हैं—इन बातोंको जाननेकी जरूरत नहीं है। परमात्मा 'है'—इसके सिवाय कुछ नहीं जानना है।**

परमात्मा 'है'—यह मानना बहुत आवश्यक है। माता-पिताको आप जान सकते ही नहीं, मान ही सकते हैं। जैसे, माँसे पैदा होते समय आपकी (शरीरकी) सत्ता तो थी, पर होश नहीं था। परन्तु पिताके समय आपकी सत्ता थी ही नहीं, आप पीछे पैदा हुए। इसी तरह ईश्वरके समय जगत् था ही नहीं। जगत् पीछे पैदा हुआ—'**एकोऽहं बहुःस्याम्**', फिर वह ईश्वरको कैसे जाने? ईश्वर संसारके परमपिता हैं—'**अहं बीजप्रदः पिता**' (गीता १४। ४)। **जैसे माँ-बापके होनेमें हमारा शरीर प्रमाण है, ऐसे ही ईश्वर ('है')-के होनेमें हमारी सत्ता (जीवात्मा) प्रमाण है।** इसलिये 'ईश्वर है'—इतना मान लो। यह बात वेदान्तके आचार्यतकके ग्रन्थोंमें नहीं आती! उनमें जगत्, जीव और परमात्मा—तीनोंको जाननेकी बात आती है, जबकि परमात्मा जाननेका विषय है ही नहीं! उनको जाननेकी शक्ति किसीमें नहीं है। भगवान् कहते हैं—

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥

(गीता १०। २)

'मेरे प्रकट होनेको न देवता जानते हैं और न महर्षि; क्योंकि मैं सब प्रकारसे देवताओंका और महर्षियोंका आदि हूँ।'

'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई' (मानस, अयोध्या० १२७। २)—यह जानना भी वास्तवमें मानना ही है। परन्तु मानना भी जाननेसे कमजोर नहीं है, प्रत्युत तेज है।

*** *** ***

श्रोता—चुप साधन अर्थात् 'है' में स्थित होना भगवान्‌के सगुण-साकारके ध्यानसे बढ़कर है क्या?

स्वामीजी—मूलमें सगुण और निर्गुण दो चीज नहीं है।

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें॥

(मानस, बाल० ११६। १)

जैसे जल और बर्फ दो चीज नहीं है, एक ही चीज है। देखनेमें दोनों अलग-अलग दीखते हैं, पर तत्त्वसे दोनों एक जल ही हैं। ऐसे ही सगुण-निर्गुण तत्त्वसे एक ही हैं। जिसमें आपकी रुचि हो, उसका ध्यान करो।

मैंने पढ़ाई निर्गुण-निराकारकी की है, इसलिये मेरी स्वाभाविक रुचि साकारकी कम और निराकारकी ज्यादा है, इसलिये मैं निराकारकी बातें ज्यादा कहता हूँ। परन्तु साकार उससे कम नहीं है। जैसे मानना जाननेसे कमजोर नहीं है, ऐसे ही साकार निराकारसे कमजोर नहीं है। हमने माँ-बापको देखा नहीं है, फिर भी उनको मानते हैं तो यह मानना कमजोर नहीं है; क्योंकि अगर माँ-बाप नहीं हैं तो हम कहाँसे आये?

तत्त्व एक ही है, चाहे उसको निराकार-रूपसे कहो, चाहे साकार-रूपसे कहो। इनमें कोई बढ़िया-घटिया नहीं है। परन्तु ध्यान करनेवालेको एकका ही ध्यान करना चाहिये; क्योंकि दोका ध्यान करनेसे निष्ठा नहीं बनती। कुछ सम्प्रदायोंमें, साधुओंमें यह बात प्रचलित है कि निर्गुण मायारहित है और सगुण मायामय है; परन्तु मैं इस बातको नहीं मानता। यह बात मेरेको बिल्कुल नहीं जँचती।

मैं परमात्माके तीन रूप मानता हूँ—सगुण-निराकार, सगुण-साकार और निर्गुण-निराकार। अगर 'साकार-निराकार' की दृष्टिसे कहा जाय तो साकार एक ही प्रकारका (सगुण-साकार) है, पर निराकार दो प्रकारका है—सगुण-निराकार और निर्गुण-निराकार। अगर 'सगुण-निर्गुण' की दृष्टिसे कहा जाय तो सगुण दो प्रकारका है—सगुण-साकार और सगुण-निराकार, पर निर्गुण एक ही प्रकारका (निर्गुण-निराकार) है। इनको आप ठीक तरहसे समझ लें, याद कर लें। परमात्माके तीनों रूपोंमें किसीका भी ध्यान करो, कोई भी कम-ज्यादा नहीं है। एक ही तत्त्व साकार भी है, निराकार भी है, सगुण भी है, निर्गुण भी है। यह प्रत्यक्ष दीखनेवाला संसार भी भगवत्स्वरूप ही है—'**वासुदेवः सर्वम्**' (गीता ७। १९)।

कोई भी साधक हो, सबकी उपासनाएँ सगुण-निराकारसे ही आरम्भ होती हैं। आपको परमात्माके विषयमें यही बात दृढ़ कर लेनी चाहिये कि परमात्मा 'है'। '**परमात्मा है'—इसका ध्यान मैं बहुत बढ़िया और बहुत सुगम मानता हूँ।** राम, कृष्ण आदि साकार-रूपकी उपासना निराकारसे कभी, किसी भी अंशमें कम नहीं है। मैं ऐसा कभी नहीं कहता कि सगुणको छोड़कर निर्गुणकी उपासना करो अथवा निर्गुणको छोड़कर सगुणकी उपासना करो। गीताने 'सब कुछ परमात्मा ही है'—ऐसा जाननेवालेकी बहुत प्रशंसा की है और उसे सबसे दुर्लभ महात्मा कहा है—'**वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः**' (गीता ७। १९)। केवल निर्गुण अथवा सगुणको माननेवालेको गीता दुर्लभ महात्मा नहीं कहती।

आप कहते हैं कि 'मकान है, ईंट है, चूना है, पत्थर है, पशु है, पक्षी है' आदि, पर मैं एक नयी बात कहता हूँ कि 'है मकान, है ईंट, है चूना, है पत्थर, है पशु, है पक्षी' आदि। ऐसा पहले किसी आचार्यने कहा हो, ऐसा देखा नहीं! पहले एक 'है' है। उस 'है' के अन्तर्गत सब कुछ है। वह 'है' सबका आधार है। उस 'है' के अन्तर्गत ही संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होता है। हम उस 'है' के हैं और वह 'है' हमारा है। वह 'है' ही 'मैं' के कारण 'हूँ' हुआ है। हरदम उस 'है' की तरफ ख्याल रखो। उस 'है' में चुप हो जाओ। यह बहुत बढ़िया साधन है। स्वतः-स्वाभाविक शान्ति मिलेगी। इसमें नींद आना और संसार ज्यादा याद आना—ये दो (लय और विक्षेप) बड़ी बाधाएँ हैं। संसार याद आना उतना बाधक नहीं है, जितना नींद आना बाधक है। नींद आये तो नामजप, कीर्तन करो। **'है' और कीर्तन एक ही है, दो चीज नहीं है। 'है' का नाम ही राम और कृष्ण आदि है।**

परमात्माको सगुण, निर्गुण, साकार, निराकार आदि किसी भी रूपसे मानो, 'है'-रूपसे उसकी सत्ता माननी ही पड़ेगी।

*** *** ***

तीन इच्छाएँ होती हैं—सांसारिक सुखकी इच्छा, परमात्माके ज्ञानकी इच्छा और परमात्माके प्रेमकी इच्छा। संसारका सुख नाश करनेवाला, पतन करनेवाला, जन्म-मरण देनेवाला है। ज्ञान और प्रेम—इन दोनोंमें बहुत आदमी ज्ञानको ऊँचा मानते हैं, पर मैं प्रेमको ऊँचा मानता हूँ। गीता प्रेमको ऊँचा मानती है। प्रेम प्राप्त होनेपर फिर कुछ पाना बाकी नहीं रहता। एक बारीक बात है कि तत्त्वज्ञान होनेपर भी उसमें सूक्ष्म अहंकार रहता है। परन्तु यह अहंकार मुक्तिमें बाधक नहीं होता, प्रत्युत मतभेद करनेवाला होता है। प्रेम प्राप्त होनेपर मतभेद नहीं रहता।

एक प्रेम होता है, एक आसक्ति होती है। प्रेम उद्धार करनेवाला है, आसक्ति पतन करनेवाली है। परन्तु प्रेम जल्दी समझमें नहीं आता। **लोग स्त्री-पुरुषमें प्रेम मानते हैं, पर वह महान् आसक्ति है, प्रेम नहीं है। उसमें प्रेमका नामोनिशान ही नहीं है!** प्रेममें देना-ही-देना होता है और आसक्तिमें

लेना-ही-लेना होता है। आसक्ति अपने सुखके लिये होती है।

श्रोता—प्रेममें रसास्वादन कैसे होता है?

स्वामीजी—प्रेममें जब जीव अपनी तरफ देखता है, तब भेद दीखता है और जब भगवान्‌की तरफ देखता है, तब अभेद दीखता है। ये दो चीज होनेपर भी अद्वैत मिटता नहीं, ज्यों-का-त्यों रहता है। वह अपनी तरफ देखता है तो अपनेमें कमी मानता है, और भगवान्‌की तरफ देखता है तो चुप हो जाता है। ये दो होनेसे प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान होता है।

द्वैतं मोहाय बोधात्प्राग्जाते बोधे मनीषया।
भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्॥

(बोधसार, भक्ति० ४२)

'बोधसे पहलेका द्वैत मोहमें डाल सकता है; परन्तु बोध हो जानेपर भक्तिके लिये कल्पित (स्वीकृत) द्वैत अद्वैतसे भी अधिक सुन्दर (सरस) होता है।'

इस श्लोकमें आये 'कल्पित' शब्दकी जगह मैं 'स्वीकृत' शब्दको ठीक मानता हूँ।

*** *** ***

श्रोता—भगवान् सुगण-निर्गुण, साकार-निराकार हैं, यह तो हमारी समझमें आता नहीं। भगवान् जैसे भी हों, हमें तो यही बात अच्छी लगती है कि भगवान् हैं और वे मेरे हैं। अब यह बात हमारे मनमें दृढ़तासे बैठ जाय, ऐसा कोई उपाय बतायें।

स्वामीजी—भगवान्‌की कृपासे होगा। आपके बिना पूछे सत्संगमें जो बातें आपने सुनी हैं, यह भगवान्‌की आपपर विशेष कृपा है। जिसकी कृपासे ये बातें मिली हैं, उसीकी कृपासे दृढ़ता होगी, उसीकी कृपासे विश्वास होगा।

अब स्वाभाविक ऐसा विचार आता है कि जगह-जगह जानेसे हमारेको भी परिश्रम होता है और लोगोंको भी परिश्रम देता हूँ, इसलिये एक जगह बैठ जायँ और केवल भगवान्‌की बात ही करें। लोग पूछें और उनको मार्मिक बातें बतायें। सुनना-सुनाना बहुत हो गया। सुनाते हुए कई वर्ष हो गये। बहुत बातें सुनायीं। **मैं चाहता हूँ कि आपका जीवन एकदम बदल जाय। आप सब-के-सब सन्त-महात्मा हो जायँ। घरमें बैठे ही साधु हो जायँ।** ऐसे आप हो जायँ—यह मेरे हाथकी बात नहीं है, पर बातें ऐसी मनमें आतीं हैं। मेरे मनमें उत्साह आता है। सत्संगके विषयमें मेरेको थकावट नहीं होती। शरीर ज्यादा परिश्रम नहीं सह सकता, पर मनमें उत्साह कम नहीं है।

आप सच्चे हृदयसे परमात्मामें लग जायँ। आपको केवल इतनी ही बात जाननेकी जरूरत है कि 'परमात्मा है'। परमात्मा कैसा है, सगुण है कि निर्गुण है, साकार है कि निराकार है, द्विभुज है कि चतुर्भुज है या सहस्रभुज है—यह जाननेकी जरूरत नहीं, पर वह है जरूर। **जो है, उसी परमात्माका मैं अंश हूँ।**

दो ही बातें हैं—'है' और 'नहीं'। परमात्मा 'है' और संसार 'नहीं' है—'**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः**' (गीता २। १६)। वह परमात्मा सबका है। वह पुण्यात्मा-से-पुण्यात्माका भी है और पापी-से-पापीका भी है, ज्ञानी-से-ज्ञानीका भी है और मूर्ख-से-मूर्खका भी है। उसकी कृपा सबपर बराबर है—'***सब पर मोहि बराबरि दाया***' (मानस, उत्तर० ८७। ४)। परन्तु उस कृपाको कोई कम पकड़ता है, कोई ज्यादा पकड़ता है, कोई नहीं पकड़ता। सूर्य एक है, पर ठीकरीमें, काँचमें और आतशी शीशेमें उसकी किरणोंका अलग-अलग असर होता है। एक माँके अनेक बालक होते

हैं तो सब बालकोंका स्वभाव तो अलग-अलग होता है, पर माँ अलग-अलग नहीं होती, प्रत्युत एक ही होती है। इसी तरह भगवान् सबके हैं।

*** *** ***

भक्ति दो तरहकी होती है—साधनभक्ति और साध्यभक्ति (प्रेमलक्षणा भक्ति)। साधनभक्ति नौ प्रकारकी होती है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

(श्रीमद्भा ७। ५। २३)

'भगवान्‌के गुण-लीला-नाम आदिका श्रवण, उनका कीर्तन, उनके रूप-नाम आदिका स्मरण, उनके चरणोंकी सेवा, पूजा-अर्चा, वन्दन तथा उनमें दासभाव, सखाभाव और आत्मसमर्पण—यह नौ प्रकारकी भक्ति है।'

साधनभक्तिके बाद साध्यभक्ति प्राप्त होती है। साधनभक्तिमें तो अहंकार रहता है, पर साध्यभक्तिमें अहंकार नहीं रहता। इसलिये साध्यभक्तिमें मतभेद नहीं होता। परन्तु तत्त्वज्ञान होनेपर सूक्ष्म अहंकार रहता है, जो जन्म-मरण देनेवाला, बन्धनकारक तो नहीं होता, पर मतभेद करनेवाला होता है। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि मतभेद बिना अहंकारके नहीं हो सकते। आचार्योंमें तो केवल (राग-द्वेषरहित) मतभेद होता है, पर उनके अनुयायियोंमें मतभेदके कारण लड़ाई होती है।

परमात्माको 'है' माननेमें मतभेद नहीं होता। कारण कि 'है' में सब एक हो जाते हैं, कोई भेद नहीं रहता। **वास्तविक सत्ता एक ही है, जो 'है'-रूपसे है। वह 'है' मेरा है, संसार मेरा नहीं है—यह खास बात है। मेरी आप सब भाई-बहनोंसे प्रार्थना है कि उस 'है' में स्थित हो जायँ।**

हमारा स्वरूप भी 'है'-रूप ही है; क्योंकि हम उस 'है' के ही अंश हैं। अंश और अंशी एक ही होते हैं, दो नहीं होते। जैसे घटाकाश और मठाकाशमें भेद नहीं होता (घड़ा और मकान तो अलग-अलग हैं, पर उनमें स्थित आकाश एक ही है), ऐसे ही 'है' में भेद नहीं होता। उसमें आप स्थित हो जाओ, यह बहुत उत्तम चीज है!

'**अहं ब्रह्मास्मि**' 'मैं ब्रह्म हूँ'—यह अहंकार है। यह तत्त्व नहीं है, प्रत्युत उपासना है।

अगर आप ध्यान करना चाहें तो एकान्तमें बैठ जायँ और ऐसा ध्यान करें कि 'एक परमात्मा है; यह संसार नहीं है'। उस 'है'-में स्थित हो जायँ। इससे शान्ति मिलेगी। दुःख मिट जायगा। वास्तवमें उस 'है' में आपकी स्थिति स्वतः है। संसारका तो हरदम त्याग हो रहा है। यह कोई नयी बात नहीं है। आप अपनेको देखो तो आप वही हो, जो बालकपनमें थे, पर शरीर वह नहीं है, जो बालकपनमें था। शरीर तो हरदम बदलता है, पर आप कभी बदलते नहीं। उस कभी न बदलनेवाली सत्तामें आप स्थित रहो। अगर ऐसा आपसे नहीं हो सके तो मन जहाँ-जहाँ जाय, वहाँ-वहाँसे हटाकर उसे 'है' में लगाओ। स्फुरणाओंको हटानेके लिये पहले श्वास और आँखकी दो क्रियाएँ बतायी थीं, अब दूसरा सुगम उपाय बताता हूँ। जब भी कोई स्फुरणा आये तो जीभ हिलाकर 'ना' कहो। ऐसा करते ही स्फुरणा कट जायगी। कितना सुगम उपाय है! जैसे, सत्संगमें किसी आदमीको नींद आती हो तो उसके सामने जीभ हिलाते हुए 'ना' कहो तो उसकी नींद उड़ जायगी! बालक रोता हो तो उसके सामने जीभ और अँगुली हिलाते हुए 'ना' इशारा करो तो वह चुप हो जायगा।

श्रोता—जिस समय कीर्तन होता है, उस समय आप भगवान्‌को प्रकट कर दें तो हम सब दर्शन

कर लें!

स्वामीजी—मैं अपनेमें ऐसी ताकत नहीं मानता। मैं ऐसी शक्ति ही नहीं मानता कि भगवान्‌को प्रकट कर दूँ। जसीडीहकी बात है। सेठ श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके सामने भगवान् प्रकट हुए। पूरी संख्या मेरेको याद नहीं है, शायद पन्द्रह-बीस आदमी मौजूद थे। सेठजीने भगवान्‌से प्रार्थना की कि आप सबको दर्शन दे दो। भगवान्‌ने उत्तर दिया कि 'सब दर्शन चाहते नहीं, कैसे दे दूँ! जयदयाल कहे तो दर्शन दे दूँ!' सेठजीने कहा कि मैं क्यों कहूँ? जिनको गरज नहीं है, उनको दर्शन देनेके लिये मैं क्यों कहूँ? मैं तो यह कहता हूँ कि हम कीर्तन कर सकते हैं!

जब दर्शन देनेकी शक्ति रखनेवाले भी ऐसा कहते हैं, फिर मेरेमें तो मैं ऐसी शक्ति ही नहीं मानता कि भगवान्‌को प्रकट कर दूँ!

*** *** ***

भगवान्‌के सिवाय कोई अपना नहीं है। वे सदा हमारे साथ रहनेवाले हैं। अपना वही होता है, जो कभी बिछुड़ता नहीं। जो मिलता है और बिछुड़ जाता है, वह अपना नहीं होता। भगवान्‌को अपना मान लो तो जरूर प्रेम हो जायगा; क्योंकि **'प्रेम' भजन, ध्यान, जप, त्याग, तपस्या आदिसे नहीं होता, प्रत्युत अपनेपनसे होता है।** अपनी फटी जूती, फटा कपड़ा भी अच्छा लगता है। माँको काला-कलूटा बालक भी अपना अच्छा लगता है।

भगवान् कहते हैं—**'समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः'** (गीता ९। २९) 'मैं सम्पूर्ण प्राणियोंमें समान हूँ। न तो कोई मेरा द्वेषी है और न कोई प्रिय है।' पापी-से-पापी भी भगवान्‌को अप्रिय नहीं है। भगवान् उसका भी हित करनेवाले हैं; क्योंकि वे प्राणिमात्रके सुहृद् हैं—**'सुहृदं सर्वभूतानाम्'** (गीता ५। २९)। वे दुनियामात्रका पालन करते हैं।

*** *** ***

भगवान् ब्रह्मारूपसे सबको उत्पन्न करते हैं, विष्णुरूपसे सबका पालन करते हैं, और शिवरूपसे सबका संहार करते हैं। आप परिवार-नियोजन करते हैं तो यह बड़ा भारी अन्याय है! बड़ा भारी पाप है! इसका नतीजा आपके लिये बड़ा भयंकर होगा! यह महान् कलियुगकी लीला है! परिवार-नियोजन करनेवाले कलियुगके चेले हैं, कलियुगके एजेण्ट हैं, कलियुगके बेटा-बेटी हैं! इस अन्यायके फलस्वरूप आपको दुःख पाना ही पड़ेगा, बच सकते नहीं! इस महान् पापसे बचो और दूसरोंको बचाओ।

*** *** ***

परमात्मप्राप्तिके अनेक रास्ते हैं। पर सबसे बढ़िया रास्ता है—भगवान्‌की शरणागति। इसको गीतामें भगवान्‌ने **'सर्वगुह्यतमम्'** (सबसे अत्यन्त गोपनीय) साधन बताया है (गीता १८। ६४)। **यह शरणागति तब सिद्ध होती है, जब आप यह मान लेते हैं कि हम संसारके नहीं हैं।** यह आपके अधीन है, दूसरेके अधीन नहीं। भगवान्‌के शरण होनेपर संसारका काम इतना बढ़िया होगा कि कह नहीं सकते! बहुत बढ़िया, सुचारुरूपसे काम होगा। कोई कमी नहीं आयेगी। आपका कल्याण भी हो जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं! केवल यह भाव बदलना है कि हम यहाँके नहीं हैं, हम भगवान्‌के हैं।

कई आदमियोंको ऐसा वहम है कि परमात्माकी तरफ चलेंगे तो घरका काम बिगड़ जायगा। परन्तु मैं ऐसा नहीं मानता। **संसारका काम तो संसारमें घुलने-मिलनेसे बिगड़ता है, पर भगवान्‌का काम भगवान्‌में नहीं घुलने-मिलनेसे बिगड़ता है।** संसारके साथ घुल-मिलकर आप संसारको नहीं

जान सकते, और परमात्मासे घुले-मिले बिना आप परमात्माको नहीं जान सकते—यह अकाट्य नियम है। इसे याद कर लो। कारण कि आप सदासे ही परमात्माके हो, संसारके नहीं हो। परमात्मासे घुल-मिल जाओगे तो संसारका बन्धन तो छूट जायगा, पर काम-धन्धा बढ़िया, सुचारुरूपसे होगा। एक बारीक बात है कि केवल कर्तव्य समझकर संसारका काम किया जाय तो काम बढ़िया होता है और बन्धन भी नहीं होता।

जैसे आप माँको नहीं जानते, पर माँ आपको जानती है, आप पिताको नहीं जानते, पर पिता आपको जानते हैं, ऐसे ही आप भगवान्‌को नहीं जानते, पर भगवान् आपको जानते हैं। आप भगवान्‌को मानते हो, पर भगवान् आपको जानते हैं। आप संसारको मानते हो, जानते नहीं। **अगर आप संसारको जान लो तो संसारसे वैराग्य हो ही जायगा और भगवान्‌से प्रेम हो ही जायगा—यह पक्का नियम है।** आप भगवान्‌के शरण हो जाओ तो आपके द्वारा बड़ा भारी उपकार होगा, संसारमात्रकी सेवा करनेका फल होगा। उतना उपकार कोई अरबों-खरबों रुपये खर्च करके भी नहीं कर सकता! भगवान्‌के शरणागत हुए सन्त-महात्माओंके द्वारा संसारका जो हित होता है, वैसा हित संसारमें घुला-मिला व्यक्ति कभी कर सकता ही नहीं। आज ही सब भाई-बहन स्वीकार कर लें कि हम भगवान्‌के हैं!

वास्तवमें आप संसारसे अलग ही थे और अलग हो जाओगे, इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं है। एक दिन सब संसार छूट जायगा, पर छूटनेपर फायदा नहीं होगा। आप छोड़ दो तो निहाल हो जाओगे! इतना लाभ होगा कि हम बता नहीं सकते! इससे दुनियामात्रका उपकार होगा। परन्तु आप संसारमें फँस जाओगे तो दुःख पाओगे और दुनियाको भी दुःख दोगे। **दुःखी आदमी ही दूसरेको दुःख देता है। सुखी आदमी दूसरेको दुःख नहीं देता।**

आप भगवान्‌के शरण होकर निश्चिन्त हो जाओ। शरण होनेपर कुछ भी करना नहीं है। काम करेंगे भगवान् और आप बैठे मौज करोगे! जैसे, छोटा बालक मौज करता है, काम-धन्धा माँ करती है! बच्चा बीमार हो जाय तो दवाई भी माँ लेती है! भगवान् खुद कहते हैं कि सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त मैं करूँगा, तू चिन्ता मत कर—'**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः**' (गीता १८। ६६)। सब काम भगवान् करें, इससे बढ़कर क्या चाहिये? इसलिये भीतरसे भगवान्‌को अपना मान लें कि 'हे नाथ! मैं आपका हूँ'। भगवान् बहुत मदद करेंगे और कोई एहसान भी नहीं मानेंगे। अपने बालकका पालन करनेमें माँ क्या एहसान करती है?

*** *** ***

श्रोता—भगवन्नाम-जपमें जप-संख्याकी प्रधानता है या ध्यानकी?

स्वामीजी—ध्यानकी प्रधानता है। संख्याकी बात इसलिये कहते हैं कि नाम-जप कम न हो जाय। ध्यानकी अपेक्षा भी हृदयके भावकी प्रधानता है। भगवान्‌का नाम लेते ही हृदय द्रवित हो जाय, नेत्रोंमें आँसू आ जायँ, शरीरमें रोमांच हो जाय! गोस्वामीजी कहते हैं—

हिय फाटहुँ फूटहुँ नयन जरउ सो तन केहि काम।
द्रवहिं स्रवहिं पुलकइ नहीं तुलसी सुमिरत राम॥

(दोहावली ४१)

'भगवान् रामका स्मरण करके जो हृदय पिघल नहीं जाते, वे हृदय फट जायँ, जिन आँखोंसे प्रेमके आँसू नहीं बहते, वे आँखें फूट जायँ और जिस शरीरमें रोमांच नहीं होता, वह शरीर जल जाय!'

वास्तवमें प्रेमकी प्रधानता है। भगवान्‌का नाम मीठा लगना चाहिये।

श्रोता—***'हरे राम'*** मन्त्रमें राम, कृष्ण और हरि—तीनोंका नाम आता है तो ध्यान किसका करें?

स्वामीजी—विष्णु भगवान्‌का ध्यान करें। राम और कृष्ण खास विष्णु भगवान्‌के ही स्वरूप हैं।

श्रोता—स्त्रियोंको गलेमें गीताजी रखनी चाहिये क्या?

स्वामीजी—कोई खास जरूरत नहीं। गीताजीको कण्ठस्थ रखना बढ़िया है।

*** *** ***

(कर्मचारियोंके प्रति—) मालिकको तंग करके रुपया लेना बड़े पापकी बात है! एक गाय अपनी प्रसन्नतासे दूध देती है, और एक गायको सुई लगाकर दूध लेते हैं—दोनोंमें कितना फर्क है! इसी तरह काम-धंधा करके मालिकको राजी करके पैसा लेना दूधके बराबर है। परन्तु बिना काम किये पैसा लेना खूनके बराबर है।

आप मिले सो दूध सम, माँग लिया सो पानी।
खैंचातानी रक्त सम, यह सन्तों की बानी॥

देनेवाला अपनी खुशीसे दे, वह अमृतके समान होता है। आप काम साठ-सत्तर रुपयोंका करें और बदलेमें पचास रुपये लें तो वह रुपया ऊँचे दर्जेका होगा, कल्याण करनेवाला होगा। अगर मालिक झूठ, कपट, धोखेबाजी करनेको कहे तो साफ कह दें कि हमने आपको अपने समयकी बिक्री की है, धर्मकी बिक्री नहीं की है। हम समय तो ज्यादा दे सकते हैं, पर धर्म बेचकर पैसा नहीं लेंगे। इससे मालिक और कर्मचारी—दोनोंका भला है।

आप उत्साहसे काम करो तो मालिक आपकी गरज करेगा। मैं तो साधु, ब्राह्मण, मजदूर आदि सबके लिये कहता हूँ कि आप अपनी आवश्यकता पैदा कर दो। आप किसीकी गरज न करें, प्रत्युत दूसरा ही आपकी गरज करे। अपने-आपको भगवान्‌का नौकर समझो और सब काम भगवान्‌का ही काम समझकर करो तो आपका जीवन बहुत शुद्ध हो जायगा।

काम करनेवाले (नौकर अथवा सेवक) छः प्रकारके होते हैं—

पीर तीर चकरी पथर, और फकीर अमीर।
जोय जोय राखे पुरुष, यह गुण देख सरीर॥

१) **पीर**—इसे कोई काम कहें तो यह उस बातको काट देता है, २) **तीर**—इसे कोई काम कहें तो तीरकी तरह भाग जाता है, फिर लौटकर नहीं आता, ३) **चकरी**—यह चक्रकी तरह चट काम करता है, फिर लौटकर आता है, फिर काम करता है। यह उत्तम नौकर होता है, ४) **पथर**—यह पत्थरकी तरह पड़ा रहता है, कोई काम नहीं करता, ५) **फकीर**—यह मनमें आये तो काम करता है अथवा नहीं करता, ६) **अमीर**—इसे कोई काम कहें तो खुद न करके दूसरेको कह देता है।

जो उत्साहपूर्वक काम करता है, उसको सब चाहते हैं। काम करनेवाला सबको अच्छा लगता है। इसलिये आप जिस क्षेत्रमें जायँ, वहाँ तत्परतासे, उत्साहसे काम करें तो संसारमें आपकी माँग हो ही जायगी। फिर दूसरे आपकी गरज करेंगे, आपको किसीकी गरज नहीं करनी पड़ेगी। चाहे कर्मचारी हो, चाहे नौकर हो, चाहे साधु हो, चाहे साधक हो, चाहे बहन-बेटी हो, सबके लिये यही बात है।

* * * * * * * * *

सृष्टि-रचनाके समय जब ब्रह्माजीने मनुष्य और गायकी रचना की, तब भगवान् बहुत प्रसन्न हुए। तात्पर्य है कि मनुष्य और गाय—ये दोनों सबका हित करनेके लिये हैं। मनुष्य, देवता, पितर, पशु, पक्षी, भूत-प्रेत आदि सबकी रक्षा और पालन करनेके लिये मनुष्य बनाया गया है। मनुष्य दूसरोंका जितना हित कर सकता है, उतना दूसरे नहीं कर सकते। भगवान्‌को याद रखना और सबका हित करना—ये दो बातें होनेसे ही मनुष्यकी मनुष्यता है, नहीं तो वह मनुष्यरूपसे पशु है। इसलिये आप सबसे प्रार्थना है कि सबका हित करो। व्यवहारमें बालकों आदिपर शासन भी करना पड़ता है, पर हृदयमें हितका भाव रहना चाहिये। **जिसके भीतर स्वार्थका भाव है, वह दूसरेका हित, सेवा नहीं कर सकता—यह अकाट्य सिद्धान्त है।** वह हितका स्वाँग (नाटक) कर सकता है, हितकी बातें कह सकता है, पर हित नहीं कर सकता। जिसे भेंट-पूजा लेनी है, अपना मकान (आश्रम) बनाना है, पैसा इकट्ठा करना है, अपनी प्रसिद्धि करनी है, वह हित नहीं कर सकता। हित वही कर सकता है, जिसके भीतर किसी तरहका स्वार्थ नहीं है। सबके हितका भाव रखनेवाले परमात्माको प्राप्त होते हैं—**'ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः'** (गीता १२। ४)।

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

(मानस, अरण्य० ३१। ५)

'जिनके मनमें दूसरेका हित बसता है, उनके लिये जगत्‌में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।'

आप सब सेवक हो। इसलिये आप संसारमें जो भी काम करो, वह सब सेवा-भावसे करो। यह कर्मयोगकी नयी बात है, जो बहुत वर्षोंके बाद मिली है! पुस्तकोंमें हरेक जगह इतना खुलासा आता नहीं। **सब-का-सब जड़-विभाग केवल सेवाके लिये है, अपने सुखभोगके लिये है ही नहीं—*'एहि तन कर फल बिषय न भाई'*** (मानस, उत्तर० ४४। १)।

संसारमें जितने भी जीव हैं, उन सबमें एक मनुष्य ही सेवा करनेवाला है। वृक्ष आदिसे आप सेवा ले सकते हो, पर वे सेवा कर नहीं सकते।

* * * * * * * * *

मेरी आपसे हाथ जोड़कर एक प्रार्थना है कि आप दूसरे धर्मके चेले मत बनो, हिन्दू बने रहो। कृपा करो कृपानाथ! अपने धर्मका नाश मत करो। हम आपलोगोंसे रुपया माँगते नहीं, कपड़ा माँगते नहीं, रोटी भी कोई अपने-आप दे दे तो ले लेते हैं, पर हम माँगते नहीं! आपसे कुछ माँगते नहीं, पर एक चीज माँगते हैं कि चोटी रखो। आप इतने लोग बैठे हो, कोई बताओ कि स्वामीजीने मेरेसे यह चीज माँगी! साठ-सत्तर वर्षोंमें कोई चीज कभी भी माँगी हो तो कोई भाई-बहन बताओ! सभामें खुला कहता हूँ! **वस्तुके बिना मैंने दुःख पाया है, कष्ट पाया है, पर माँगा नहीं!** अब एक बात माँगता हूँ कि चोटी रखो। जो चोटी (शिखा) नहीं रखते, वे हिन्दू नहीं हैं। हिन्दू वे हैं, जो चोटी रखते हैं। हिन्दूधर्ममें कल्याणकी जो बात है, ऐसी बात किसी देशमें, किसी वेशमें, किसी भाषामें मैंने नहीं सुनी है। चोटी रखनेसे कोई विपत्ति आयी हो तो बताओ! किसी आचार्यने, सन्त-महात्माने चोटी रखनेसे मना किया हो तो बताओ! चोटी रखनेसे आपको क्या नुकसान है? चोटी रखनेसे आपका कोई नुकसान हुआ हो तो बताओ! चोटी न रखनेसे आपके पितरोंको पिण्ड-पानी नहीं मिलेगा।

* * * * * * * * *

भक्तिमार्गपर चलनेवालोंको संसारकी पंचायती नहीं करनी चाहिये कि वह कैसा है। संसार अच्छा हो या बुरा हो, हमें उससे क्या मतलब? हमें तो भगवान्‌से मतलब है। इसलिये संसारसे बिल्कुल

विमुख होकर भगवान्‌के सम्मुख हो जायँ।

जितने भी सुखभोग हैं, वे सब-के-सब दुःखोंके कारण हैं—**'ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते'** (गीता ५। २२)। जो संसारसे सुख चाहता है, उसको दुःख भोगना पड़ेगा.....पड़ेगा.....पड़ेगा—यह नियम है। इससे कोई बच सकता ही नहीं। अगर दुःख नहीं चाहते हो तो संसारका सुख मत चाहो। आपसे प्रार्थना है कि आप योगी बनो, भोगी मत बनो। आपकी संसारके सुखसे अरुचि हो जाय।

सच्चा साधक संसारमें रहेगा, पर भोगोंमें फँसेगा नहीं; रुपये रखेगा, पर रुपयोंमें फँसेगा नहीं।

*** *** ***

सत्संगके अन्तमें भगवन्नाम-कीर्तन होता है तो लोग उठकर चलने लगते हैं! यह देखकर मेरेको बड़ा भारी आश्चर्य आता है और दुःख भी होता है कि ये क्या सत्संग करते हैं! भाग्य फूट गया है! भगवान्‌का नाम लेनेमें रस आना चाहिये। भगवान्‌का नाम लेनेमें, चिन्तन करनेमें आप मस्त हो जाओ तो आपको पता लगेगा कि भगवान् क्या चीज हैं। भगवान्‌का नाम लेते समय उठ जाओगे तो भगवान्‌को क्या प्राप्त करोगे! वहाँ जाकर क्या निहाल हो जाओगे? कलियुगमें कीर्तनकी बड़ी भारी महिमा है—**'कलौ तद्धरिकीर्तनात्'** (श्रीमद्भा० १२। ३। ५२)। समुदायमें जैसा कीर्तन होता है, वैसा आप अकेले नहीं कर सकते। समुदायमें कीर्तन करनेसे एक रस आता है, विलक्षणता आती है। यह मौका फिर कहाँ मिलेगा!

*** *** ***

श्रोता—जो भगवान्‌की भक्ति करते हैं, नाम लेते हैं, पूजा-पाठ करते हैं, उनको तो लोक-परलोकमें आनन्द मिलना चाहिये, पर हम देखते हैं कि वे यहाँ बहुत कष्ट पाते हैं! उनके घरमें लड़ाई-झगड़ा, अपमान, गरीबी आदि देखी जाती है। उनको बहुत प्रकारसे दुःख देखना पड़ता है। भक्ति करनेवालेको तो सुख मिलना चाहिये, फिर उन्हें दुःख क्यों मिलता है?

स्वामीजी—वास्तवमें सुख और दुःख कोई चीज नहीं है। दुःख कोई खराब चीज नहीं है। दुःख तो पापोंका नाश करनेवाला है। जो संसारी आदमी हैं, उनके लिये दुःख खराब है और सुख अच्छा है। पर जो परमात्माकी प्राप्ति चाहते हैं, उनको सुख-दुःखकी परवाह नहीं होती। उनके लिये सुख-दुःख दोनों समान हैं—**'सुखदुःखे समे कृत्वा'** (गीता २। ३८)। सुख भी ठहरनेवाला नहीं है और दुःख भी ठहरनेवाला नहीं है। फिर इनमें क्या राजी हों, क्या नाराज हों!

जो भगवान्‌का भजन करना चाहे, उसको दुःख मिले तो अच्छा है! उसके पाप नष्ट होते हैं। एक तो भजनसे लाभ होता है, एक दुःखसे लाभ होता है; डबल लाभ होता है! सुख मिलना चाहिये भोगी आदमीको! जो सुखका दास होता है, वह भगवान्‌का भजन कैसे करेगा? सुखका दास भगवान्‌का भजन नहीं कर सकता। कई धनी आदमी बैठे हैं, जो भगवान्‌का नाम भी नहीं लेते! संसारका सुख तो बाँधनेवाला है।

दुःखका भी असर नहीं पड़े तो भजनमें बाधा नहीं पड़ती। दुःखका असर पड़नेसे भजनमें बाधा पड़ती है। अपने साथ तो न सुख रहनेवाला है, न दुःख रहनेवाला है। सुख-दुःख दोनों ही टिकनेवाले नहीं हैं। जो अनुकूलताको चाहता है, वह भगवान्‌का भजन नहीं कर सकता। सुख आये या दुःख, भजन नहीं छूटना चाहिये।

सुखसे पुण्योंका नाश होता है और दुःखसे पापोंका नाश होता है। आप पुण्योंका नाश चाहते

हो या पापोंका? सुखके लिये भजन करनेवाला भजनका तत्त्व जानता ही नहीं। महाभारत, वनपर्वमें द्रौपदीने युधिष्ठिरजीसे कहा है कि आप धर्मको छोड़कर एक कदम भी आगे नहीं रखते पर आप जंगलमें कष्ट भोग रहे हो और दुर्योधन अधर्मपूर्वक राज्य करते हुए मौज कर रहा है? युधिष्ठिरजीने उत्तर दिया कि जो सुख पानेकी इच्छासे धर्मका पालन करता है, वह धर्मका तत्त्व जानता ही नहीं! वह तो भोगी है।

एक 'दुःखका भोग' होता है, एक 'दुःखका प्रभाव' होता है। दुःख आनेपर दुःखी हो जाना 'दुःखका भोग' है और दुःख आनेपर उसके कारणकी खोज करके उसको (सुखकी इच्छा)-को मिटाना 'दुःखका प्रभाव' है। **सुखकी इच्छा छोड़ दो तो दुःख आयेगा ही नहीं।** इसलिये दुःखका भोग बढ़िया नहीं है, दुःखका प्रभाव बढ़िया है। शरणानन्दजी महाराजसे किसीने कहा कि हम आपकी जीवनी लिखना चाहते हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि मेरी जीवनी है—दुःखका प्रभाव, लिख लो। केवल दुःखके प्रभावसे ही मेरे जीवनमें उन्नति हुई है।

दुःखसे नुकसान नहीं होता, प्रत्युत कुसंगसे नुकसान होता है। कुसंगसे बचना चाहिये। दुःखसे तो पाप कटते हैं, फिर हर्ज क्या है? हर्ज तो तब हो, जब पाप बढ़ें। दुःखका नतीजा बढ़िया होता है। सुखका नतीजा बढ़िया नहीं होता। आप अपने जीवनको देखें तो जब-जब दुःख आया है, आफत आयी है, तब-तब भगवान्‌का भजन बढ़ा है। इसलिये भगवान्‌का सच्चा भक्त सुख नहीं चाहता।

धिन सरणो महराज को, निसिदिन करियै मौज।
रामचरण संसार सुख, दई दिखावै नौज॥

जो सुख चाहता है, दुःखसे घबराता है, वह भगवान्‌का भक्त नहीं होता, प्रत्युत भोगी होता है। आप भोगी मत बनो, योगी बनो। आपके जीवनमें दुःख आनेपर आपकी उन्नति हुई है या अवनति? आपका भजन बढ़ा है या घटा है? विचार करके बताओ। आपको अपनी उन्नति करनी है या सुख भोगना है? बताओ। आप मानो या न मानो, दुःख आनेपर आपका भजन बढ़ा है। अगर भजन नहीं बढ़ा है तो आप भजन करनेवाले नहीं हो, भोगी हो! भोगी तो पशु भी होते हैं! कुत्ते, गधे, सूअर आदि भी सुख चाहते हैं—

सूकर कूकर ऊँट खर बड़ पसुअन में चार।
तुलसी हरि की भगति बिन वैसे ही नर नार॥

दुःख सहनेमें तो कठिनता होती है, पर नुकसान नहीं होता। सुखमें नुकसान होता है। खुद भगवान्‌ने कहा है—'**यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः**' (श्रीमद्भा० १०। ८८। ८) 'जिसपर मैं कृपा करता हूँ, उसका सब धन धीरे-धीरे हर लेता हूँ'। बँगलामें भी आता है कि जो मेरा भजन करता है, उसका मैं सर्वनाश कर देता हूँ, पर फिर भी वह मेरा भजन नहीं छोड़ता तो मैं उसका दासानुदास हो जाता हूँ—

जे करे आमार आश, तार करि सर्वनाश।
तबू जे ना छाड़े आश, तारे करि दासानुदास॥

दुःखमें भजन करनेवाले साधु बहुत हुए हैं। सुखमें भजन करनेवाले कम हुए हैं। दुःखमें उन्नति होती है, बुद्धिका विकास होता है। सुखसे मनुष्य संसारमें फँसता है। अतः अपनी ओरसे किसीको दुःख नहीं देना है, पर दुःख आ जाय तो भगवत्कृपा मानकर हर्षित होना है।

मैंने सुना है कि कुछ लोग वैराग्यसे भी डरते हैं कि कहीं वैराग्य हो गया तो सुख छूट जायगा,

भोग छूट जायँगे! उनका भाग्य फूट गया! अरे, वैराग्य हो जायगा तो निहाल हो जाओगे!

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं-
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्॥
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं-
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्॥

(भर्तृहरिवैराग्यशतक ३१)

'भोगोंमें रोगादिका, कुलमें गिरनेका, धनमें राजाका, मानमें दैन्यका, बलमें शत्रुका, रूपमें बुढ़ापेका, शास्त्रमें विवादका, गुणमें दुर्जनका और शरीरमें मृत्युका भय सदा बना रहता है। इस पृथ्वीमें मनुष्योंके लिये सभी वस्तुएँ भयसे युक्त हैं। एक वैराग्य ही ऐसा है, जो सर्वथा भयरहित है!'

आपको पता नहीं है, रुपया नहीं होनेमें जो सुख है, वह सुख रुपयोंमें नहीं है! आपको दीखता है कि हम समझते हैं, स्वामीजी नहीं समझते, पर मैं आपसे दुगुना समझता हूँ! आपने रुपयोंको रखकर ही देखा है, त्यागकर नहीं देखा, पर मैंने दोनों देखे हैं! बड़ी मौज रहती है, आनन्द रहता है! दुःखमें, तिरस्कारमें, अपमानमें भी आनन्द होता है! बुखारमें भी आनन्द आता है! *'सदा दीवाली सन्त की, आठों पहर आनन्द'!*

*** *** ***

श्रोता—विधवा-विवाह होना चाहिये या नहीं?

स्वामीजी—विधवा-विवाहकी 'विवाह' संज्ञा ही नहीं होती। 'विवाह' संज्ञा उसकी होती है, जिसमें कन्यादान होता है। विवाह तो कन्याका ही होता है।

सिद्धान्तकी बात है कि यह मनुष्यशरीर विषयभोगके लिये है ही नहीं—*'एहि तन कर फल बिषय न भाई'* (मानस, उत्तर० ४४। १)। कई लड़कियाँ कुआँरी रहती हैं तो अपनी मरजीसे रहती हैं। लड़कियोंको कुआँरी रहनेकी सम्मति मैं नहीं देता हूँ। शास्त्रमें पुरुष भी दो तरहके बताये गये हैं—नैष्ठिक (अखण्ड) ब्रह्मचारी और उपकुर्वाण ब्रह्मचारी। जो विचारके द्वारा अपनी इन्द्रियोंको रोक नहीं सकता, उसको विवाह कर लेना चाहिये। विवाह भी भोगोंकी परीक्षा करके उनका त्याग करनेके लिये है। मूलमें मनुष्यशरीरका तात्पर्य भजनमें लगनेका है, भोगोंमें लगनेका है ही नहीं।

भोगेच्छा अपनी चीज नहीं है, प्रत्युत पशुता है। अपनी खास चीजें दो हैं—प्रेम-पिपासा और जिज्ञासा। चाहे भगवान्‌से प्रेम करो, चाहे अपना बोध करो। इसमें खास चीज भगवान्‌से प्रेम करना है, जिसके लिये ही मनुष्यशरीर है। परन्तु जो केवल भोग भोगने और पैसा कमानेमें लगे हुए हैं, वे भगवान्‌की प्राप्ति कर ही नहीं सकते। आप सत्संगमें आ गये, इतनी आपने कृपा की है! इस शहरमें कितने लोग हैं और उनमेंसे सत्संगमें कितने आये हैं, आप देख लो!

हम ज्यादा जानते नहीं! जितना जानते हैं, वह भी किसको बतायें, कोई मानता ही नहीं! भर्तृहरिने कहा है कि 'जो पढ़े-लिखे समझदार लोग हैं, उनके भीतर ईर्ष्या आ गयी कि हम किसीसे क्यों सुनें! जो धनीलोग हैं, उनके भीतर अभिमान आ गया कि सब हमारे पास आते हैं, हम किसीके पास क्यों जायँ! दूसरे बेचारे लोग रात-दिन अपना और कुटुम्बका पेट भरनेमें ही लगे हुए हैं। उनके पास सुननेके लिये समय ही नहीं है। हमारे पास कई बढ़िया-बढ़िया बातें थीं, पर हमारे साथ वे भी बूढ़ी हो गयीं (हमारे भीतर ही गल-पच गयीं)! किसीके काम नहीं आयीं!'—

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।

अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम्॥

(भर्तृहरिनीतिशतक २)

कौन सुनै कासों कहूँ, सुनै त समुझै नाहिं।
कहना सुनना समझना, मन ही का मन माहिं॥

मेरे मनमें भी यही बात आती है! एक सन्तसे किसीने पूछा कि मन एकाग्र कैसे हो? सन्तने कहा कि तुमने यह मेरेसे ही पूछा है या पहले भी किसीसे पूछा था? वह बोला कि पहले भी पूछा था। सन्तने पूछा कि उसने क्या बताया? वह बोला कि याद नहीं है। तो सन्त बोले कि यही फजीती (बेइज्जती) मेरी भी करोगे! यह दशा मेरे सामने बीती हुई है! लोग पूछ तो लेते हैं, पर उसका उत्तर क्या मिला, यह याद ही नहीं रहता!

आपसे प्रार्थना है कि आप भगवान्‌में लग जाओ। आपको शान्ति मिलेगी। सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) कहते थे कि धनीलोग उपाय पूछते हैं कि पैसा कहाँ लगायें, जिससे उसकी रक्षा हो और वृद्धि भी हो; परन्तु हम जो बताते हैं, उसको मानते नहीं। हम पैसा लगानेकी बढ़िया जगह बताते हैं कि दान-पुण्य करो, गरीबोंकी सेवा करो, भूखोंको रोटी दो, वस्त्रहीनोंको कपड़ा दो। वेदव्यासजी महाराज कहते हैं—

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते॥

(महाभारत, स्वर्गा० ५। ६२)

'मैं दोनों हाथ ऊपर उठाकर पुकार-पुकारकर कह रहा हूँ, पर मेरी बात कोई नहीं सुनता! धर्मसे मोक्ष तो सिद्ध होता ही है, अर्थ और काम भी सिद्ध होते हैं, तो भी लोग उसका सेवन क्यों नहीं करते!'

लोग सुनते नहीं, सुनते हैं तो मानते (करते) नहीं, मानते नहीं तो दुःख पाते हैं!

*** *** ***

सिवाय भगवान्‌के अपना कोई है नहीं। आप रुपये-पैसोंको अपना मानते हो, पर एक कौड़ी साथ चलेगी नहीं! कुटुम्ब साथ रहेगा नहीं! शरीर भी साथ रहेगा नहीं! एक दिन ये सब आपको छोड़नेवाले हैं। कोई साथ देनेवाला नहीं है।

संसार साथी सब स्वार्थके हैं,
पक्के विरोधी परमार्थ के हैं,
देगा न कोई दुःख में सहारा,
सुन तू किसी की मत बात प्यारा।

दुःखमें सहारा देनेवाला कोई नहीं है, खुद ही भोगना पड़ेगा। इसलिये भगवान्‌को पुकारो कि 'हे नाथ! हे प्रभो! हे मेरे स्वामी! ऐसी कृपा करो कि मैं आपको भूलूँ नहीं'। उनकी कृपासे ही ठीक होगा। वे ही हमारा साथ देनेवाले हैं। यही सच्ची बात है, चाहे आज सुनो, महीनेके बाद सुनो, वर्षोंके बाद सुनो, जन्मके बाद सुनो, कभी सुनो। सबकी सेवा करो, उपकार करो, हित करो। वह कामकी चीज है। सेवा साथ चलेगी नहीं, सेव्य साथ चलेगा नहीं, पर दूसरेके हितका भाव साथ चलेगा।

सत्संग करनेवाले भाई-बहनोंसे मेरा कहना है कि आप वृत्तियोंकी तरफ ध्यान क्यों नहीं देते?

आपमें ईर्ष्या होती है, द्वेष होता है, पाखण्ड होता है, दुःख होता है, जलन होती है, दूसरेकी उन्नति सही नहीं जाती, तो इन वृत्तियोंका सुधार कब करोगे? अपने भाव शुद्ध बनाओ। दूसरा आदमी ठीक हो जाय, यह आशा मत करो। आप ठीक हो जाओ।

तेरे भावै कछु करौ, भलौ बुरौ संसार।
'नारायन' तू बैठि के, अपनौ भुवन बुहार॥

जबतक अपना स्वभाव शुद्ध नहीं बनाओगे, तबतक दुःख मिटेगा नहीं। सबका सुधार हो जाय—यह आपके हाथकी बात नहीं है। आप ठीक हो जाओ तो सब ठीक हो जायगा। इसलिये चुप होकर भगवान्‌के भजनमें लग जाओ।

जनहरिया संसार में, बहु बोल्यां बहु दुक्ख।
चुप रहिये हरि सुमिरिये, जो जिव चाहे सुक्ख॥

भगवान्‌से बार-बार यह प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। नकली करो तो भी असली हो जायगा, पर आप करो तो सही। **मेरे मनमें आती है कि बहुत झंझट आये तो आँखें मीचकर भगवान्‌के भजनमें लग जाय 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!'**। सब संसार आपके अनुकूल हो जाय, यह असम्भव बात है। कोई राजी, कोई नाराज; कोई ठीक, कोई बेठीक—यह तो होता ही रहेगा। इसलिये संसार कुछ भी करे, आप भगवान्‌के भजनमें लग जाओ और मनसे पुकारो 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। इस प्रार्थनासे शान्ति मिलेगी।

मेरेको कई साधुओंने कहा है कि आपने तो दुनियाका भला करनेके लिये समुद्र-मन्थन शुरू किया है! कुछ होगा नहीं! क्यों तकलीफ देखते हो! मैंने कहा कि मैं तो अपने मनकी निकालता हूँ। दूसरा माने या न माने, हमें मतलब क्या है? हम अपनी तरफसे अच्छी बात कहते हैं। दूसरा नहीं माने तो नहीं सही, पर अपने तो कहेंगे—ऐसा मैंने विचार किया है!

*** *** ***

श्रोता—जीव भगवान्‌के सम्मुख हो गया—इसकी निशानी क्या है?

स्वामीजी—निर्भयता और निश्चिन्तता। भगवान्‌के चरणोंके शरण होते ही मनुष्य अभय हो जाता है। उसकी चिन्ता मिट जाती है।

चाहे साधु हो, चाहे गृहस्थ, भगवान्‌का आश्रय लिये बिना शान्ति नहीं मिलेगी। जिनके पास करोड़ों-अरबों रुपये हैं, उनसे मिलकर पूछ लो कि क्या उनको शान्ति मिल गयी! क्या उनको दुःख नहीं होता! भगवान्‌में लगे बिना क्या सभी साधु सुखी हो गये? उनको शान्ति मिल गयी? **मनचाही पूरी होने से आप सुखी हो जाओगे—यह बात नहीं है।** अगर भगवान्‌का आश्रय ले लो तो दुःख आनेपर भी सुखका अनुभव होगा। पासमें खानेके लिये रोटी न हो, पीनेके लिये जल न हो और पहननेके लिये कपड़ा भी पूरा न हो, फिर भी अगर भगवान्‌का आश्रय है तो आप सुखी हो जायँगे। जितना भगवान्‌में लगे हैं, उतना ही सुख है और जितनी संसारकी चाहना है, उतना ही दुःख है।

ना सुख काजी पण्डिताँ, ना सुख भूप भयाँ।
सुख सहजाँ ही आवसी, तृष्णा-रोग गयाँ॥

आप विधवा-विवाहकी बात करते हैं, पर जिनका विवाह हो गया है, वे सुखी हो गये हैं क्या? उनका दुःख मिट गया है क्या? जिन्होंने परिवार-नियोजन, नसबन्दी, गर्भपात आदि किया है, वे सुखी हो गये हैं क्या? विचार करें।

भगवान्‌के सम्मुख हुए बिना सुख कैसे मिल जायगा? सम्मुखतामें जितनी कमी है, उतना ही दुःख है। सत्संग करनेवाले भी सच्चे हृदयसे जितने भगवान्‌में लगेंगे, उतनी उनको शान्ति मिलेगी। परन्तु टोली बनाकर 'हमारे स्वामीजी अच्छे हैं, हमारे बाबाजी ठीक हैं' आदि बातें बनाओगे तो शान्ति नहीं मिलेगी। आप जितने भगवान्‌के परायण हो जाओगे, उतने आप सुखी जरूर हो जाओगे, पक्की बात है।

सच्चे हृदयसे रात-दिन भगवान्‌को 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। भगवान्‌के पीछे ही पड़ जाओ। आपकी अशान्ति मिटेगी, सच्ची बात है। **आप भले ही जबर्दस्ती करके देखो, नकली करके देखो, पर 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'—यह आठ पहर करके देखो तो सही! जरूर शान्ति मिलेगी।** एक-दो, तीन-चार दिन परीक्षा ही करके देखो। ठीक दीखे तो लग जाओ, ठीक नहीं दीखे तो छोड़ दो! जरूर शान्ति मिलेगी। जैसे समुद्रसे उठनेके बाद जल जबतक समुद्रमें नहीं मिल जाता, तबतक उसे शान्ति नहीं मिलती, ऐसे ही भगवान्‌का अंश जबतक भगवान्‌में नहीं मिल जाता, तबतक उसे शान्ति नहीं मिलेगी।

*** *** ***

एक मनको लगाना होता है, एक अपने-आपको लगाना होता है। मनको लगाना 'करणसापेक्ष' है और अपने-आपको लगाना 'करणनिरपेक्ष' है। करणनिरपेक्ष साधनमें भगवान्‌के साथ सीधा सम्बन्ध होता है कि 'मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं'। **मन लगानेकी अपेक्षा सीधे भगवान्‌में लगनेकी ज्यादा महिमा है।** इसमें साधक योगभ्रष्ट नहीं होता। कारण कि योगसे मन चलित होनेपर ही योगभ्रष्ट होता है—'**योगाच्चलितमानसः**' (गीता ६। ३७)। भगवान्‌से अपनापन करनेपर मन लगाना नहीं पड़ता, प्रत्युत मन स्वतः भगवान्‌में लगता है। आप खुद भगवान्‌के अंश हैं। **आपके और भगवान्‌के बीचमें मन नहीं है।** इसलिये आप भगवान्‌के साथ अपनापन जोड़ो।

मैं जैसा भी हूँ, भगवान्‌का हूँ—यह बहुत दामी बात है। **आप 'गीता-जयन्ती' मनाओ तो यही मनाओ कि मैं भगवान्‌का हूँ।** इस बातको आप दृढ़तासे पकड़ लो। गीता सुननेके बाद अर्जुनने कहा—'**नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा**' (गीता १८। ७३) 'मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है'। अर्जुनने यह नहीं कहा कि मुझे ज्ञान हो गया, प्रत्युत यह कहा कि मुझे स्मृति प्राप्त हो गयी अर्थात् याद आ गयी, भूल मिट गयी। याद पुरानी बातकी होती है; अतः इस बातकी याद आ गयी कि मेरा सम्बन्ध सदासे भगवान्‌के साथ है। भगवान्‌के सिवाय सदा साथ रहनेवाला कोई है ही नहीं। भगवान्‌के सिवाय अपना कोई है ही नहीं, होगा ही नहीं, हो सकता ही नहीं।

सर्वथा भगवान्‌के शरण हो जाओ तो बिना उद्योग किये गीताका भाव आपके हृदयमें स्वतः आ जायगा, आपके जीवनसे टपकने लगेगा!

भगवान्‌का चिन्तन उसको करना पड़ता है, जो भगवान्‌के शरण नहीं हुआ। परन्तु जो शरण हो गया, उसको स्वतः भगवान्‌की याद आती है।

*** *** ***

भगवान् अपने हैं—यह बात मेरेको बहुत प्रिय लगती है। भगवान्‌को अपना नहीं मानो तो भी भगवान् आपको छोड़ेंगे नहीं, पर इससे आपको लाभ नहीं होगा। आपको लाभ आपके माननेसे ही होगा। भगवान् तो आपका पिण्ड छोड़ेंगे नहीं! आप भगवान्‌को मानो या न मानो, उनकी स्तुति करो या निन्दा करो, उनका आदर करो या निरादर करो, कुछ भी करो, भगवान् आपको छोड़ेंगे नहीं।

ऐसा मालिक और मिलेगा नहीं! मिलेगा भी कैसे, उनके समान कोई है ही नहीं! भगवान्‌को तो अपना मानोगे नहीं और दूसरा आपके साथ रहेगा नहीं, कुछ हाथ नहीं लगेगा, दुःख पाओगे! भगवान्‌को अपना माननेमें आपकी क्या बेइज्जती होती है? क्या नुकसान होता है?

आप शान्तिसे एकान्तमें बैठकर विचार करो कि आपका वास्तवमें कौन है? आपके जितने सम्बन्धी हैं, उनमें आपके साथ रहनेवाला कौन है? वे आपको क्या निहाल करेंगे? जितना संसारको अपना मानोगे, उतना ही दुःख है। **दूसरोंकी सेवा करनेमें तो लाभ है, पर उनको अपना माननेमें नुकसान है। सेवाके लिये भी सम्बन्ध जोड़ोगे तो दुःख पाओगे। सेवा कर दो, पर सम्बन्ध मत जोड़ो।**

भगवान्‌को पुकारो कि 'हे नाथ! ऐसी कृपा करो कि मैं आपको भूलूँ नहीं'। इस प्रकार भगवान्‌से प्रार्थना करो तो शान्ति मिलेगी। कोई आफत आ जाय तो एकान्तमें बैठकर पन्द्रह-बीस मिनट, आधा घण्टा 'राम-राम-राम-राम' करो तो शान्ति मिलेगी। ज्यादा करोगे तो ज्यादा लाभ होगा। भक्तोंके चरित्र पढ़ो तो शान्ति मिलेगी।

भगवान्‌को याद करो, सत्संग करो, सच्छास्त्र पढ़ो तो दुःख मिटेगा, नहीं तो दुःख मिटेगा नहीं। आप जो लौकिक उपाय करते हो, उन उपायोंसे दुःख मिटता है—ऐसा हमारी समझमें आया नहीं। भगवान्‌की तरफ लगो तो आपको शान्ति मिलेगी, सुख मिलेगा—यह बात सच्ची है, चाहे आप मानो, चाहे मत मानो। परिवार-नियोजन करनेसे हम सुखी हो जायँगे—यह आपको बड़ा भारी वहम है! मैं कहता हूँ कि इससे बिल्कुल सुख नहीं होगा.....बिल्कुल नहीं होगा.....बिल्कुल नहीं होगा.....! बड़ा भयंकर दुःख पाना पड़ेगा! सच्चे हृदयसे भगवान्‌को पुकारते जाओ कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं' तो शान्ति मिल जायगी, सुख मिल जायगा।

*** *** ***

श्रोता—कल एक लड़का मर गया, अब उसको कैसे शान्ति मिले, इसका कोई उपाय बतायें।

स्वामीजी—अच्छे ब्राह्मणको साथमें ले जाकर विधिपूर्वक गयाश्राद्ध कराओ तो उसकी आगे गति होगी। इसके सिवाय तीन काम और हैं। पहली बात, जब-जब उसकी याद आये, तब-तब यह देखो कि वह भगवान्‌के चरणोंमें बैठा है। दूसरी बात, उसके निमित्त गीता, भागवत, विष्णुसहस्रनाम, हनुमानचालीसाका पाठ करो। भगवान्‌के नामका जप करो, कीर्तन करो। ब्राह्मणोंको और गायोंको दान करो। तीसरी बात, छोटे-छोटे गरीब बच्चोंको मिठाई बाँटो तो इससे शोक दूर होता है, मैंने करवाकर देखा है।

एक तात्त्विक बात है। जिससे सुख लिया है, पर सुख दिया कम है, उसका अपनेपर कर्जा रहता है। कर्जा रहनेपर उसकी याद आती है और दुःख होता है। कर्जा उतारनेके लिये नामजप करो। दो-चार दिनका अखण्ड कीर्तन करो। दान-पुण्य करो। छोटे बच्चोंको मिठायी, खिलौने दो, जिससे वे राजी हो जायँ। वे जितने ज्यादा राजी होंगे, उतना आपका कर्जा उतरेगा।

श्रोता—घरमें जो ब्राह्मण रसोई बनाता है, उसके घरमें यदि गर्भपात हुआ हो तो उस ब्राह्मणके हाथकी बनी रसोई लेनी चाहिये या नहीं?

स्वामीजी—नहीं लेनी चाहिये। गर्भपात मामूली पाप नहीं है, बड़ा भारी पाप है!

*** *** ***

साधन करनेवालोंको बहुत सावधान रहना चाहिये। नारदजीने कामको जीत लिया तो उनमें अभिमान आ गया। अभिमानके कारण उनकी बड़ी दुर्दशा हुई! पहले तो काम-क्रोधादिको जीतना मुश्किल

होता है, और इनको जीत जाय तो अभिमान आ जाता है! इससे बचनेके लिये भगवान्‌के चरणोंकी शरण रखे और हृदयसे 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारता रहे तथा भगवान्‌पर विश्वास रखे कि उनकी कृपासे ही रक्षा होगी। अपनी शक्ति न माने। अपनी शक्ति मानते ही अभिमान आ जायगा! नारदजी-जैसे भगवान्‌के भक्तको भी अभिमान आ गया! यह अभिमान जल्दी साधककी पकड़में नहीं आता। काम-क्रोधादि दोषोंका नाश भगवान्‌की कृपासे होता है, पर मनुष्य अपना अभिमान कर लेता है। **'मैं कुछ हूँ'—इसमें सब तरहकी आफत है! तरह-तरहके अवगुण आ जायँगे!**

तीन बातें बड़ी मार्मिक हैं—'मेरा कुछ नहीं है, मेरेको कुछ नहीं चाहिये और मैं कुछ नहीं हूँ'। परन्तु ये बातें भगवान्‌की कृपासे ही आचरणमें आती हैं। इसलिये भगवान्‌की कृपाका सहारा लेकर हरदम भीतरसे 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारते रहो। भगवान्‌की कृपाके बिना काम नहीं होगा। परन्तु 'मैं भगवान्‌को पुकारनेवाला हूँ, मैं भगवान्‌से प्रार्थना करनेवाला हूँ'—यह मैं-पन भी रहेगा तो अभिमान आ जायगा। दोष तो अपना होता है, पर अभिमानके कारण दूसरेमें दोष दीखता है। नारदजी भी इसे नहीं समझ पाये! भगवान्‌ने अपनी माया खींची, तभी समझ पाये। इसका अर्थ यह नहीं है कि नारदजीको अभिमान हुआ तो हमारेको भी हो जायगा, प्रत्युत इसका अर्थ यह है कि हरदम सावधान रहें। जब बड़ों-बड़ोंमें अभिमान आ जाता है तो फिर हम क्या चीज हैं! सरल हृदयसे भगवान्‌को 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारें तो भगवान्‌की कृपासे ही बच सकते हैं, नहीं तो बचना बड़ा मुश्किल है!

साधारण आदमियोंमें तो गुण और दोष दोनों दीखते हैं, पर भगवान्‌में तथा उनके भक्तोंमें, सन्त-महात्माओंमें कोई दोषदृष्टि करेगा तो उसको दोष-ही-दोष दीखेंगे, गुण दीखेंगे ही नहीं! नारदजीको भी भगवान्‌में दोष-ही-दोष दीखते हैं—***'स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह सदा कपट ब्यवहारु'*** (मानस, बाल० १३६)। कारण यह है कि भगवान्‌में तथा सन्तोंमें दोष बिल्कुल नहीं होते, पर अपना भाव बिगड़नेसे उनमें भी दोष दीखने लगते हैं।

*** *** ***

एक बात मेरे मनमें आयी है, आप ध्यान देकर सुनें। जहाँ-कहीं भजन-स्मरण होता है, पाठ-पूजा होती है, वैदिक और शास्त्रीय विधिका पालन होता है, उस जगह लोग जल्दबाजी करते हैं कि जल्दी कार्य समाप्त करो। मुझे विचार आता है कि जल्दी करके आप करोगे क्या! भगवान्‌का कीर्तन होता है तो लोग उठने लगते हैं, तो कीर्तन छोड़कर आप उससे बढ़िया क्या काम करोगे! नामकरण, विवाह, मृत्यु आदिमें जो शास्त्रीय विधि की जाती है, उसमें भी कहेंगे कि पण्डितजी, जल्दी करो! ऐसा क्या काम आवश्यक है, जिसके लिये इतनी जल्दी करते हो? विचार करो। अपना समय फालतू बरबाद करनेमें, खेल-तमाशेमें, ताश-चौपड़में, सिनेमामें तो आप जल्दी नहीं करते, पर पारमार्थिक काम करनेमें जल्दी करते हैं! ये नहीं सोचते कि जल्दी करके करेंगे क्या?

यह मनुष्यशरीर तभी सफल होगा, जब पारमार्थिक कार्योंमें ज्यादा समय लगाओगे। इसलिये मेरा सभीसे कहना है कि पारमार्थिक कार्योंमें आप हृदय खोलकर, बड़े धैर्यसे, शान्तिसे समय लगाओ। पारमार्थिक बातोंका आदर करो। सांसारिक काम तो जल्दी-जल्दी करो, पर भजन-ध्यान शान्तिपूर्वक करो। कारण कि संसारके कामोंका मौका तो बहुत मिलता है, पर पारमार्थिक कार्योंका मौका बहुत कम मिलता है। मनुष्यजन्म भोगोंके लिये नहीं मिला है।

पारमार्थिक बातें वास्तवमें अपने साथमें चलनेकी पूँजी है, जीवनको सफल बनानेकी पूँजी है। अतः उनमें ज्यादा समय लगाना चाहिये। अभी आप सत्संगमें ये बातें सुन रहे हो, फिर ये बातें

सुननेको मिलेंगी नहीं! कौन कहेगा, और क्यों कहेगा!

*** *** ***

श्रोता—व्यापारमें लोगोंने हमारे लाखों रुपये मार लिये, और आजकल यह धन्धा बहुत ज्यादा चल रहा है। इसलिये मन बड़ा दु:खी, अशान्त रहता है! ऐसे समयमें हमें क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—जो दूसरोंके रुपये खा जाते हैं, उनके लिये यह बड़े नुकसानकी बात है! अभी उनको पता नहीं है, पर इसका फल बड़ा भयंकर होगा। मेरी प्रार्थना है कि किसीका रुपया दबाओ मत। दूसरेके रुपये खाओगे तो शान्ति नहीं मिलेगी, सुखसे नींद नहीं आयेगी। यह एकदम पक्की बात है। काम, क्रोध और लोभ—ये तीनों नरकके दरवाजे हैं। परन्तु जिनको नरकोंमें जानेका शौक लगा है, वे मेरी बात कैसे मानेंगे! अभी तो आप दूसरेके रुपये दबाकर समझते हो कि हमें लाभ हो गया, पर परिणाममें हानि बहुत ज्यादा होगी। आपको ब्याजसहित रुपये चुकाने पड़ेंगे।

दूसरेका रुपया खानेवालेको बड़ा भयंकर दण्ड भोगना पड़ता है, मामूली दण्ड नहीं। सत्संग करनेवाले यह बात हृदयमें धारण कर लें कि कम-से-कम हम दूसरोंका हक नहीं लेंगे। तभी आपका सत्संग करना सफल होगा।

जिसका रुपया मारा गया है, उसको यह सोचना चाहिये कि वह कोई खराब रुपया था, जो चला गया। अत: भगवान्‌की बड़ी कृपा हो गयी कि मैं शुद्ध हो गया! अगर हो सके तो उन रुपयोंका हृदयसे त्याग कर दें, उनको भगवान्‌के अर्पण कर दें।

वास्तवमें आपका वही नुकसान हुआ है, जो होनेवाला था। एक दिन संसारकी सब चीजें छूटेंगी। शरीर छूटेगा, कुटुम्ब छूटेगा, घर छूटेगा, धन छूटेगा, जमीन छूटेगी, सब छूटेगा। ये सब चीजें छूटनेवाली हैं, आपके साथ रहनेवाली कोई चीज है ही नहीं। इसलिये आप चिन्ता मत करो। पाप, अन्याय दूसरेने किया है। आपने पाप, अन्याय किया ही नहीं तो फिर चिन्ता किस बातकी? जिसने पाप किया है, वह रोये, हम क्यों रोयें? रुपयोंके अभावसे आपको कष्ट भोगना पड़ता है तो वह भी आपकी एक तपस्या है। उसे भगवान्‌की भेजी हुई तपस्या मानो।

*** *** ***

शास्त्रकी, माता-पिताकी, गुरुजनोंकी, श्रेष्ठ पुरुषोंकी आज्ञाका पालन करनेमें बड़ा आनन्द है! यह सबका कल्याण करनेवाली, सीधी-सरल बात है, फिर भी लोग इसको क्यों नहीं पकड़ते हैं! उद्दण्डता करनेसे, बात न माननेसे फायदा नहीं है।

हृदयमें सबके हितका भाव रखो। बाजारमें हरेक चीज भावसे मिलती है। वह भाव तो बाजारके अधीन है, पर सबके हितका भाव अपने अधीन है। सबके हितका भाव होनेमें आपका कल्याण है, इसमें सन्देह नहीं है। अपने हृदयको शुद्ध रखो—***'सरल सुभाव न मन कुटिलाई'*** (मानस, उत्तर० ४६। १)। **अपने हृदयकी मलिनता अपना ही नाश करती है।** जो अपना भाव अच्छा बनाता है, वह तीन लोककी सेवा करता है! अत: हृदयमें सबके हितका, बढ़िया-से-बढ़िया भाव रखो। मनके लड्डूमें खाँड़ कम क्यों! उसमें क्या खर्चा लगे!

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता॥

(चाणक्यनीतिदर्पण १६। १७)

'मधुर वचन बोलनेसे सब प्राणी सन्तुष्ट, प्रसन्न हो जाते हैं। अत: मधुर वचन ही बोलने चाहिये।

वचनोंमें क्या दरिद्रता?'

तन कर मन कर वचन कर, देत न काहू दुक्ख।
तुलसी पातक हरत है, देखत उसको मुक्ख॥

जो तन-मन-वचनसे किसीको दु:ख नहीं देता, उसका दर्शन करनेसे दूसरोंके पाप दूर होते हैं! अब इसमें आपका क्या खर्चा हुआ? क्या परिश्रम हुआ? क्या पसीना आया?

दूसरेको दु:ख देनेवाला सुखी नहीं हो सकता। आपका भाव शुद्ध होगा तो आपको शान्तिसे नींद आयेगी, आपका शरीर भी नीरोग होगा। **वृत्तियाँ खराब होनेसे स्वास्थ्य भी खराब होता है। मनमें प्रसन्नता रहे तो रोगी आदमी भी नीरोग हो जाता है।**

अपना उद्धार और पतन अपने ही हाथ है। जिसका स्वभाव अच्छा होगा, उसको परलोकमें भी अच्छी योनि मिलेगी। आप जैसा स्वभाव बनाओगे, वैसा ही शरीर मिलेगा। अपना स्वभाव शुद्ध बनानेमें सब स्वतन्त्र हैं।

कर्जदार आदमीकी कर्जा चुकानेकी नीयत होती है तो साहूकार उसको कैद नहीं कराता। ऐसे ही जिसकी नीयत ठीक होती है, उसको भगवान् कृपा करके पुन: अवसर (मनुष्यशरीर) देते हैं। अगर आप भजन-स्मरण करो, अपनी नीयत ठीक रखो तो आप योगभ्रष्ट हो जाओगे, आपको फिर मनुष्यजन्म मिलेगा।

एक बाबाजी थे। उनसे किसीने पूछा कि बाबाजी, संसार कैसा? तो बाबाजी बोले कि बेटा, तेरे जैसा। आप अच्छे बनो तो संसार अच्छा हो जायगा। आप बुरे बनो तो संसार बुरा हो जायगा। दुर्योधनको शहरमें कोई अच्छा आदमी नहीं मिला और युधिष्ठिरको कोई बुरा आदमी नहीं मिला! जैसा चश्मा होगा, वैसा ही दीखेगा। **पैसा कमानेमें आप स्वतन्त्र नहीं हो, जिसमें आप रात-दिन लगे हो। परन्तु स्वभाव सुधारनेमें आप स्वतन्त्र हो, जिसमें आप लगते ही नहीं!** पैसा कमानेमें प्रारब्ध मुख्य है और स्वभाव सुधारनेमें पुरुषार्थ मुख्य है।

*** *** ***

शरीरकी दृष्टिसे ब्राह्मणके शरीरको पूजनीय कहा गया है—***'पूजिअ बिप्र सील गुन हीना'*** (मानस, अरण्य० ३४। १)। परन्तु जिसमें भगवान्‌की भक्ति होती है, वह सबसे श्रेष्ठ होता है—

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥

(मानस, अरण्य० ३५। ३)

'जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता—इन सबके होनेपर भी भक्तिसे रहित मनुष्य वैसा ही दीखता है, जैसा जलसे रहित बादल!'

जहाँ भक्ति होती है, वहाँ शरीरका अभिमान नहीं होता, और जहाँ शरीरका अभिमान होता है, वहाँ भक्ति नहीं होती। ज्ञानमार्गमें भी जबतक शरीरका अभिमान रहता है, तबतक तत्त्वज्ञान नहीं होता। तत्त्वज्ञान होनेपर शरीरका, वर्ण-आश्रमका अभिमान नहीं रहता। परन्तु तत्त्वज्ञान होनेपर भी एक सूक्ष्म अहम् रह जाता है, जिसका सर्वथा अभाव भक्तिमें ही होता है। अत: भक्तिकी बहुत विशेष महिमा है। तात्पर्य है कि लौकिक मर्यादामें तो शरीरकी प्रधानता है, पर पारमार्थिक मार्गमें भावकी प्रधानता है।

मनुष्य अनेक शास्त्र आदिके ज्ञानके कारण पूजनीय नहीं होता, प्रत्युत भगवान्‌के साथ सम्बन्ध

होनेसे पूजनीय होता है। **भगवान्‌के सम्बन्धका जो माहात्म्य है, वह माहात्म्य सद्‌गुण, ज्ञान आदिमें नहीं है।** इसलिये मैं जोर देकर कहता हूँ कि आप भगवान्‌के साथ अपना सम्बन्ध मानो। आप संसारकी बातोंको लेकर तो अपनेको ऊँचा मानते हैं, पर भगवान्‌को भूल जाते हैं! जीवमात्र भगवान्‌का अंश है। अतः जो भगवान्‌में लग गया, वह छोटा कैसे रहा? वह किसी भी वर्ण, आश्रम, जाति आदिका क्यों न हो, वह बड़ा हो गया!

शबरी अपना परिचय देती है—

अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी॥

(मानस, अरण्य० ३५। २)

परन्तु भगवान् शबरीको नवधा भक्ति सुनाकर कहते हैं—***'सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें'*** (मानस, अरण्य० ३६। ४)। शबरीको इस बातका पता ही नहीं है कि उसमें नवधा भक्ति है! इसका तात्पर्य यह निकला कि शबरी भजन करनेवाली थी, व्याख्यान देनेवाली नहीं। जो व्याख्यान देनेवाला होता है, उसको सब बातें याद रखनी पड़ती हैं और सभामें कहनी पड़ती हैं। परन्तु जो भजन करनेवाला होता है, वह इन बातोंका ख्याल ही नहीं करता कि लोग मेरेको क्या कहेंगे? मैं लोगोंको क्या समझाऊँगा? ये विचार उसके मनमें आते ही नहीं। भक्तोंमें किसी बातका अभिमान होता ही नहीं। गोस्वामीजी भी कहते हैं—

कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू। सकल कला सब बिद्या हीनू॥

(मानस, बाल० ९। ४)

कबित बिबेक एक नहिं मोरें। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें॥

(मानस, बाल० ९। ६)

कबि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम गुन गावउँ॥

(मानस, बाल० १२। ५)

परन्तु दूसरी जगह उन्होंने अपनेको कवि स्वीकार भी किया है—

संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कबि तुलसी॥

(मानस, बाल० ३६। १)

तात्पर्य है कि मैं तो कवि नहीं था, पर भगवान् शंकरकी कृपासे कवि हो गया! शंकरजीकी आज्ञाको मैं कैसे टाल सकता हूँ! वास्तवमें गोस्वामीजी बड़े विलक्षण कवि थे, उनकी कवितामें अलंकार भरे हुए हैं, पर उनके मनमें कवि होनेका अभिमान है ही नहीं! अभिमानने उनको छुआ ही नहीं! जिसको अपनेमें कोई गुण, अलौकिकता, विशेषता दीखती ही नहीं, वह अभिमान कैसे करे?

'हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं'—ऐसा माननेसे अभिमान बहुत जल्दी दूर होता है। भगवान्‌का होते ही स्वतः-स्वाभाविक नम्रता आ जाती है। जहाँ भगवान्‌की विशेषता दीखती है, वहाँ अपनी विशेषता नहीं दीखती। जहाँ अपनी विशेषता दीखती है, वहाँ भगवान्‌की विशेषता नहीं दीखती। मनुष्य भगवान्‌के सम्बन्धसे बड़ा होता है। **हमारेमें जिस विशेषताको देखकर लोग हमारा आदर करते हैं, वह विशेषता भगवान्‌की है, हमारी नहीं है।**

मुझे गीता और रामचरितमानस—दोनों ग्रन्थ बड़े विलक्षण तथा गहरे दीखते हैं। दोनोंका ही शब्द-विन्यास बड़ा विलक्षण है। दो ही मुख्य अवतार हुए हैं—रामावतार और कृष्णावतार। रामावतारकी रामायण है और कृष्णावतारकी गीता है। उपदेश भी दो ही तरहसे दिया जाता है—एक कहकर बताया

जाता है और एक करके बताया जाता है। रामायणमें भगवान् रामने करके बताया है और गीतामें भगवान् कृष्णने कहकर बताया है।

*** *** ***

जब आप नींदसे उठते हैं, उस समय आरम्भमें 'मैं हूँ'—इस रूपसे आपकी स्वाभाविक स्थिति होती है। उसके बाद राग-द्वेषको लेकर अस्वाभाविक स्थिति होती है। स्वाभाविक स्थितिमें राग-द्वेष नहीं होते। परन्तु आप स्वाभाविक स्थितिका आदर न करके अस्वाभाविक स्थितिका आदर करते हो। अगर आप अस्वाभाविक स्थितिको न पकड़कर स्वाभाविक स्थितिको पकड़ लो तो निहाल हो जाओगे! स्वाभाविक स्थितिमें न राग है, न द्वेष है, न हर्ष है, न शोक है, न सुख है, न दुःख है, न ठीक है, न बेठीक है। इस स्वाभाविक स्थितिका अर्थात् अपने होनेपन ('है')-का अनुभव आप अभी-अभी कर सकते हो। यह बहुत सुगम बात है! इसमें आपको करना कुछ नहीं है! इस स्वाभाविक स्थितिसे बढ़िया कोई चीज है ही नहीं! इस स्थितिमें स्त्री-पुरुषका, साधु-गृहस्थका, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रका भाव नहीं है। अगर आप इस 'है' को पकड़ लो तो निहाल हो जाओगे!

एक गुरु और चेला थे। वे एक दिन भिक्षाके लिये गये। उन्होंने एक बगीचा देखा तो उसमें चले गये। वह बगीचा राजाका था। दोपहरका समय होनेसे वहाँ कोई नहीं था। वे दोनों वहाँ जाकर एक कोठीमें बैठ गये। एक कमरेमें चेला बैठ गया और दूसरे कमरेमें गुरुजी बैठ गये। थोड़ी देरके बाद वहाँ राजा आया। राजाने पहले चेलेको वहाँ बैठा देखा तो पूछा कि तुम कौन हो? चेला बोला—मैं साधु हूँ। राजाने उसे एक थप्पड़ लगाया और कहा कि क्या यह साधुका काम है! निकल यहाँसे! फिर राजाने गुरुजीको देखा और उनसे पूछा कि तुम कौन हो? गुरु चुपचाप बड़ी शान्तिसे बैठे रहे, कुछ बोले नहीं। राजाने कहा कि महाराजजी, यहाँ कैसे बैठे हैं? गुरुजी चुपचाप उठकर चले गये। आगे जाकर गुरु और चेला दोनों मिले तो चेलेने बताया कि महाराज, मुझे थप्पड़ लगा है! गुरुजी बोले कि कुछ बन गया होगा। वह बोला कि मैं तो कुछ नहीं बना! गुरुजी बोले कि कुछ बने बिना थप्पड़ लग सकता ही नहीं! कुछ बना है, तभी थप्पड़ लगा है। चेलेने कहा कि मैंने तो यही कहा था कि मैं साधु हूँ। गुरुजी बोले कि साधु बना, इसलिये थप्पड़ लगा!

तात्पर्य है कि 'है' में आपकी स्वाभाविक स्थिति है, जिसे जीवन्मुक्त-अवस्था कहते हैं। परन्तु आप स्त्री, पुरुष, गृहस्थ, साधु, ब्राह्मण, वैश्य आदि बन जाते हो तो बँध जाते हो। मूलमें सिद्धान्त यह है कि **'कुछ करना है'—यह संसार है और 'कुछ नहीं करना है'—यह परमात्मा है।** संसारमें क्रिया है, पर संसारसे अतीत होनेपर क्रिया नहीं है। इसको काममें लानेका तरीका यह है कि हरेक कार्यके आरम्भमें और अन्तमें आप शान्त हो जायँ कि हम इस कार्यसे रहित हैं। स्थिरता आपका स्वभाव है। आप हर समय ही शान्त रहनेका स्वभाव बना लें। यह बहुत बढ़िया साधन है। **परमात्माकी प्राप्ति जितनी सुगम है, उतना सुगम काम कोई है ही नहीं! करनेसे संसारकी प्राप्ति है और न करनेसे परमात्माकी प्राप्ति है।**

'मैं ब्राह्मण हूँ'—यह भी देहाभिमान है और 'मैं मेहतर हूँ'—यह भी देहाभिमान है। ये दोनों ही परमात्मप्राप्तिमें समानरूपसे बाधक हैं। हमारा स्वरूप सत्तामात्र है। स्वाभाविक स्थिति सबकी बराबर है। **अपनेको कुछ भी मानेंगे तो संसार आयेगा।**

*** *** ***

एक भगवान्‌के सिवाय कोई रक्षा करनेवाला नहीं है। किसीमें अधिकार नहीं कि वह रक्षा कर सके। आपको जो नाम प्यारा लगे, उस नामसे भगवान्‌को पुकारो। भगवान्‌से एक ही बात माँगो

कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भगवान् रामने अपने रहनेके लिये जगह पूछी तो वाल्मीकिजीने रहनेकी जगह बतायी—

सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ।
तिन्ह कें मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ॥

(मानस, अयोध्या० १२९)

'जो सब कर्मोंका एकमात्र यही फल माँगते हैं कि हमारा भगवान् श्रीरामके चरणोंमें प्रेम हो जाय, उनके मनरूपी मन्दिरमें आप और सीताजी दोनों निवास करें।'

इस जगहको आप धारण कर लो तो भगवान्‌को यहाँ रहना पड़ेगा, इसमें सन्देह नहीं! भजन-स्मरण, जप-कीर्तन, पाठ-पूजा, तीर्थ-व्रत आदि जितने भी शुभ कर्म हैं, उन सबका एक ही फल माँगो कि भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम हो जाय। सब भाई-बहनोंके लिये एक ही बात है कि हर समय भगवान्‌की याद बनी रहे। भगवान् याद करनेमात्रसे प्रसन्न हो जाते हैं! इतना सस्ता कोई नहीं है! **इतने तरहके दुःख हैं कि जिनका वर्णन नहीं हो सकता, वे सब-के-सब दुःख केवल भगवान्‌को याद करनेमात्रसे मिट जायँगे!** एक ही बात पकड़ लो कि 'हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। उनकी कृपासे आपका छोटा-बड़ा सब काम ठीक हो जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

*** *** ***

रुपयोंका संग्रह करना और इन्द्रियोंसे भोग भोगना—ये दोनों सभी भाई-बहनोंके लिये बहुत बाधक हैं। हृदयसे, रोकर 'हे नाथ! हे नाथ!' प्रार्थना करो तो ये छूट जायँगे। जितना सुख लिया है, उससे सवाया-डेढ़ा दुःख हो जाय तो ये छूट जायँगे। परन्तु उनसे सुख ज्यादा होता हो और मनमें दुःख कम हो तो प्रार्थना भी असली नहीं होती। असली प्रार्थनाके बिना ये छूटते नहीं। कोई शूरवीरतासे छोड़ दे तो बहुत बढ़िया बात है, नहीं तो भगवान्‌से 'हे नाथ! हे नाथ! हे प्रभो! हे प्रभो! हे दीनबन्धो! हे दीनबन्धो!' प्रार्थना करो। यह सुगम उपाय है। परन्तु यह उपाय तब काम आयेगा, जब सुखभोगकी रुचिसे अधिक परमात्माकी रुचि हो जाय। भोग और संग्रहकी जो इच्छा है, उससे ज्यादा त्यागकी इच्छा हो जाय। भोगोंकी रुचि तो भीतरसे है, पर दूसरेसे सुनकर ऊपरसे प्रार्थना करते हैं, तबतक असली प्रार्थना नहीं होती।

भोग और संग्रहके त्यागके बिना परमात्मामें रुचि नहीं होती, परमात्माको समझ सकते ही नहीं। वास्तवमें भोग और संग्रह इतने बाधक नहीं हैं, जितनी इनकी इच्छा बाधक है। बाहरसे भोग और संग्रह भी नुकसान करता है, पर भीतरकी जोरदार इच्छा न हो तो वह बाधक नहीं होता। अपनेमें निर्बलताका अनुभव करके भगवान्‌को पुकारो कि 'हे नाथ, मैं छोड़ना चाहता हूँ, पर मेरेसे यह छूटती नहीं', तो भगवान्‌की कृपासे छूट जायगी। वास्तवमें हमारेमें निर्बलता है, पर इसका अनुभव नहीं हो रहा है। **निर्बलताके अनुभवके बिना भीतरकी असली पुकार होती नहीं।** भगवान् असली पुकार ही सुनते हैं। असली पुकार हो तो भगवान् जरूर सुनते हैं।

सच्चे हृदय से प्रार्थना जब भक्त सच्चा गाय है।
तो भक्तवत्सल कान में वह पहुँच झट ही जाय है॥

पर एक बात है, नकली करते-करते वह असली हो जाता है! इसलिये आप जैसी हो, वैसी ही प्रार्थना करना शुरू कर दो। रात-दिन 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारना शुरू कर दो तो कभी हृदयसे प्रार्थना निकलेगी और खट प्रकाश हो जायगा! आपको महान् आनन्द मिल जायगा! जैसे बुखार उतरनेपर

शरीर हल्का हो जाता है, ऐसे आप हल्के हो जाओगे!

असली सत्संग मिल जाय तो व्यक्तिमें जरूर फर्क पड़ता है, भीतरसे पुकार होती है, और अपनी स्थिति साफ दीखती है। परन्तु असली सत्संग मिलता नहीं! लोग ऊपर-ऊपरसे बातें करते हैं। भीतरसे कहने-सुननेवाले बहुत कम हैं।

आप अच्छे महात्मा ढूँढ़ते हो, पर जो महात्मा मिले हैं, क्या उनसे लाभ ले लिया? जो महात्मा मिले हैं, उनसे लाभ नहीं लिया तो उनसे बड़े महात्मा मिलकर क्या करेंगे? आपको जैसे महात्मा मिले हैं, उनसे लाभ उठाओ तो उनसे श्रेष्ठ महात्मा आपको मिल जायँगे, इसमें सन्देह नहीं है। छोटी क्लासको पास करनेपर अध्यापक अपने-आप बड़ी क्लासमें ले जाता है। पर पहले छोटी क्लास पास तो करो! इसलिये आपको जो अच्छे साधु-सन्त मिलें, उनका आदर करो, उनकी बातोंको मानो। तब आप उनसे ऊँचे महात्माकी प्राप्तिके अधिकारी हो जाओगे।

जैसे सत्संगसे बड़ा लाभ होता है, ऐसे ही कुसंगसे बड़ी हानि होती है। मदिरा आदि पीनेवाले, मांस, मछली, अण्डा आदि खानेवालेका संग भयंकर है। उनसे भी ज्यादा भयंकर है ईश्वरको नहीं माननेवाले नास्तिकका संग! नास्तिकका संग बहुत घातक, पतन करनेवाला है।

आपमें कोई गुण नहीं है, कोई योग्यता नहीं है, पर भगवान्‌को हृदयसे पुकारो तो यह सब योग्यताओंकी मूल योग्यता है! अगर आपमें भगवान्‌पर श्रद्धा-विश्वास है और 'भगवान् मेरे हैं'—ऐसा भाव है तो आप भले ही पढ़े-लिखे न हों, सबसे तेज हो जाओगे।

*** *** ***

जैसे बिना मालिकके पशुओंकी दशा होती है, ऐसी दशा भगवान्‌को अपना मालिक न माननेवालोंकी हो रही है! अगर भगवान्‌को अपना मालिक मान लें, उनके अधीन हो जायँ तो सब काम ठीक हो जाय। परन्तु ऐसा न करनेके कारण अशान्ति रहती है, दुःख होता है, जलन होती है। अतः आप सबसे प्रार्थना है कि आप भगवान्‌को अपना मालिक मान लें और 'हे नाथ! हे नाथ!' कहकर भगवान्‌को पुकारें। आप जैसी अवस्थामें हों, उसी अवस्थामें पुकारें। भगवान् सबकी पुकार सुनते हैं।

हूं वंदों जाकूं सदा, सबकी सुणै पुकार।
अज्ज कीट पर्यंत लों, भय भंजन भरतार॥

(करुणासागर ३)

'मैं ऐसे परमात्माकी वन्दना करता हूँ, जो ब्रह्मासे लेकर कीड़ेतक सबकी प्रार्थना सुनता है और उनके कष्टोंको मिटाकर उनका पालन-पोषण करता है।'

जबतक मनुष्य मिलने तथा बिछुड़नेवाली वस्तुओंको अपनी और अपने लिये मानता है, तबतक वह बन्धनमें है, पराधीन है। **बन्धनमें रहते हुए भी आप भगवान्‌का आश्रय लेकर 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो तो आपकी बुद्धि शुद्ध हो जायगी, मन पवित्र हो जायगा, आपका शोक मिट जायगा, दुःख मिट जायगा, हृदयकी जलन मिट जायगी। यह सच्ची बात है!**

सत्संग करनेवालोंमें फर्क पड़ता है, ऐसा मैंने देखा है। जिन गाँवोंमें सौ-दो सौ वर्षोंसे कोई सन्त नहीं गया, उन गाँवोंको भी मैंने देखा है और जहाँ सत्संग होता है, उन गाँवोंको भी देखा है। ठीक तरहसे जाननेवाले तो बहुत ही कम हैं! जैसे मनुष्यशरीर दुर्लभ है, ऐसे ही तात्त्विक बातोंको जाननेवाला भी दुर्लभ है। वास्तवमें आप सब-के-सब जानकार बन सकते हो, ऐसा मेरा विश्वास

है, पर आप धैर्यपूर्वक सत्संग करो, विचार करो। आप जानते भी हो, पर उसपर टिकते नहीं, उसपर अमल नहीं करते! इसलिये दु:ख पा रहे हो! आपसे प्रेमपूर्वक प्रार्थना है कि अपने मालिकको 'हे नाथ! हे नाथ!' कहकर पुकारो। बिना भगवान्‌के शान्ति मिलेगी नहीं। गीता-रामायण पढ़ो और भगवान्‌को पुकारो। बहुत लाभ होगा। आप करके देखो।

* * * * * * * * *

श्रोता—अखण्ड भजन कैसे हो?

स्वामीजी—आपसे अखण्ड भजन नहीं होता, पर खण्ड भजन तो होता है न? बताओ! जब खण्ड भजन भी आपसे नहीं होता तो फिर अखण्ड भजन कैसे होगा? पहली सीढ़ीपर पैर रखा नहीं, फिर अन्तिम सीढ़ीपर पैर कैसे रखोगे? गिर जाओगे! कृपा करके पहले खण्ड भजन तो कर लो कृपानाथ! फिर अखण्ड भजन भी हो जायगा। दो-तीन मिनट छूट गया, फिर भजनमें लग गये—यह खण्ड भजन है। अगर खण्ड भजन होता है तो अखण्ड भजन भी हो जायगा।

कोई भी काम लगन होनेसे होता है। अखण्ड भजन भी लगन होनेसे होगा। **स्वयंज्योतिजी महाराजसे किसीने भजनकी बात पूछी तो वे बोले कि 'भैया, भजन तो भूखसे होता है'।** वह भूख मुझे आपमें दीखती नहीं! सत्संग होता है, उस समय आपके मनमें यह बात पूछनेकी आती है, नहीं तो मनमें ही नहीं आती!

मेरी प्रार्थना है कि आप भगवान्‌को अपना मानो। भजन अपनेपनसे होता है। अपने रुपये चले जायँ तो क्या दशा होती है! अपना कपड़ा खो जाय, जूती खो जाय तो क्या दशा होती है! अपनी जूतीकी जितनी याद आती है, उतनी भी भगवान्‌की याद आती है क्या?

भजनके लिये ही मानवशरीर मिला है, वह (भजन) नहीं होगा तो और क्या होगा? आप रसोईमें जाकर थाली लेकर बैठ गये तो भोजनके लिये ही बैठे हो। भोजनके सिवाय और क्या मतलब है? ऐसे ही मनुष्यशरीरमें आ गये तो भजनके सिवाय और क्या मतलब है? जो भजन करना चाहता है, उसकी भगवान् सहायता करते हैं, सन्त सहायता करते हैं। इतना ही नहीं, चोर-डाकू भी उसकी सहायता करते हैं!

भगवान्‌का भजन करनेवाला आदमी सामान्य नहीं होता। भगवान्‌के दरबारमें उसका बड़ा आदर होता है। **भगवान्‌के भजनसे जो अधिकार मिलता है, वैसा अधिकार किसी लोकमें नहीं मिलता।** भगवान्‌के भजनमें बहुत मिठास है, पर भोगोंकी मिठास छूटनेपर ही वह मिठास पैदा होती है।

* * * * * * * * *

श्रोता—सास और बहूके विचार नहीं मिलते हैं, जिससे घरमें बड़ी अशान्ति रहती है!

स्वामीजी—सदा घरमें साथ रहना है तो अपना विचार (आग्रह) बिल्कुल छोड़ दो। विशेषरूपसे बहूको अपना आग्रह छोड़ देना चाहिये। कारण कि सास बड़ी है, बहू छोटी है। अगर बड़ोंकी आज्ञा मानकर चलो तो तुम्हारा मंगल होगा।

एक नम्बरकी बात यह है कि अगर मिटा सको तो मतभेद मिटा दो। अगर नहीं मिटा सको तो दो नम्बरकी बात यह है कि अलग हो जाओ।

रोजीना री राड़ आपस री आछी नहीं,
बणे जठातक बाड़, चटपट कीजै चकरिया।

प्रेमके लिये ही साथ रहना है, और आपसमें खटपट होती हो तो प्रेमके लिये ही अलग होना है। अलग होनेपर फिर बिल्कुल खटपट नहीं रखनी है। हमारी सम्मति तो यह है। आगे आपकी मरजी! हम आपको बाध्य नहीं करते।

*** *** ***

परमात्माके सिवाय कोई अपना नहीं है। धन, घर, परिवार आदिको अपना मानना जन्म-मरणका रास्ता है! संसारकी सेवा करनेका फल मुक्ति है। परन्तु संसारको अपना मानोगे तो सेवा नहीं होगी। कुटुम्बको अपना मानोगे तो परिवारकी सेवा नहीं होगी। परिवारको अपना मानोगे तो गाँवकी सेवा नहीं होगी। गाँवको अपना मानोगे तो प्रान्तकी सेवा नहीं होगी। प्रान्तको अपना मानोगे तो देशकी सेवा नहीं होगी। देशको अपना मानोगे तो विदेशकी सेवा नहीं होगी। विदेशको अपना मानोगे तो त्रिलोकीकी सेवा नहीं होगी। परन्तु किसीको भी अपना नहीं मानोगे तो सबकी सेवा होगी। तात्पर्य है कि किसीको अपना मानना सेवामें बाधक है। **सेवा वही कर सकता है, जो किसीको भी अपना नहीं मानता।** यह नियम है कि जो किसीको भी अपना नहीं मानता, वह सबको अपना मानता है, सबकी सेवा करता है। संसार किसीका व्यक्तिगत नहीं है। संसारको व्यक्तिगत माननेवाला दुःख पाता है, जन्म-मरणमें जाता है। परन्तु संसारको भगवान्‌का मानकर सेवा करनेवाला मुक्त हो जाता है।

श्रोता—अपना नहीं मानेंगे तो सेवा कैसे होगी? वस्तुकी रक्षा कैसे होगी?

स्वामीजी—मेरे द्वारा आपकी सेवा होती है कि नहीं होती? मैं किसको अपना मानता हूँ? बताओ। अपना माननेसे सेवा होती ही नहीं! **अपना माननेसे मोह होगा, सेवा नहीं होगी.....नहीं होगी.....नहीं होगी.....।**

श्रोता—मोह कैसे छूटे?

स्वामीजी—सेवा करो, पर सेवा चाहो मत, तब मोह छूटेगा। सेवाके बदलेमें कुछ चाहोगे तो व्यापार चलेगा, मोह नहीं छूटेगा। संसारको अपना मानोगे तो मोह होगा। भगवान्‌को अपना मानोगे तो मोह मिटेगा। **दो बातें याद रखो, सेवा करनेके लिये सब अपने हैं, और सेवा लेनेके लिये कोई अपना नहीं है।**

सबसे प्रेमसे कहना है कि भगवान्‌को अपना मानो और संसारकी सेवा करो।

श्रोता—कोई हमारी सेवा करे तो सेवा लें कि नहीं?

स्वामीजी—सेवा नहीं लेनी है। जहाँतक बने, निर्वाहमात्रकी सेवा ले लो। रोटी दे तो खा लो। पानी पिलाये तो पी लो। पर उसमें सुख-आराम मत लो। सेवा लेनी इतनी बाधक नहीं है, जितनी सेवा लेनेकी इच्छा बाधक है। दूसरा मेरी सेवा करे, मेरे अनुकूल बन जाय—यह इच्छा बाधक है। दूसरा दे तो मौज, नहीं दे तो मौज! **जो संसारसे सुख चाहता है, वह कभी सुखी नहीं होगा, और जो दूसरोंको सुख पहुँचाता है, पर सुख चाहता नहीं, वह कभी दुःखी नहीं होगा—यह नियम है।**

श्रोता—हम जिसकी सेवा करें, वह यह सोचे कि यह किसी लालचसे सेवा करता है.....!

स्वामीजी—दूसरा कुछ भी सोचे, उसकी आपके ऊपर जिम्मेवारी नहीं है। आपके ऊपर वह लागू नहीं होगा। पर आप कुछ चाहोगे तो फँसोगे। लोग आपको अच्छा समझें या बुरा समझें, कुछ भी समझें, आप अपनी चाहना मत रखो।

*** *** ***

गीताकी टीका 'साधक-संजीवनी' जीवनकी असली संजीवनी बूटी है! 'साधक-संजीवनी' पढ़नेसे जीवनमें फर्क पड़ता है, यह नियम है। आप इसे एक बार समझकर पढ़ो तो आपमें फर्क पड़ेगा। दोबारा पढ़ोगे तो आपको नयी बात मिलेगी। आपको खुदको आश्चर्य होगा कि यह बात तो पहले मिली ही नहीं! तीसरी बार पढ़ो तो फिर नयी बात मिलेगी! चौथी बार पढ़ो तो फिर नयी बात मिलेगी! यह कभी पुरानी नहीं होती। यह बात 'साधक-संजीवनी' पढ़नेवालोंने मेरेसे कही है। हमारे साधु रामनिवासजी कहते थे कि एक 'साधक-संजीवनी' पासमें रखो, और पुस्तककी जरूरत नहीं है। इसमें ऐसी साधन-सामग्री भरी हुई है कि सब तरहसे मनुष्यका कल्याण हो जाय! परन्तु पढ़े बिना क्या होगा! लड्डू नाम भी अच्छा है और दीखनेमें भी अच्छा है, पर उसे खानेसे जो रस मिलेगा, वह क्या देखनेसे मिलेगा? लड्डूका रस तो मिट जायगा, पर 'साधक-संजीवनी' का रस मिटेगा नहीं!

*** *** ***

मेरे मनमें एक ही बात विशेष रहती है कि भगवान्‌को अपना समझो। मूलमें भूल यही है कि जिनके हम अंश हैं, उन भगवान्‌को अपना नहीं समझते, और जो अपना नहीं है, उस संसारको अपना समझते हैं! संसार अपना है नहीं, अपने काम आयेगा नहीं। यह केवल दूसरोंकी सेवाके लिये ही है। अपने लिये केवल भगवान् हैं और वे ही अपने काम आयेंगे। संसारसे जो कुछ मिला है, केवल सेवाके लिये ही मिला है। उससे सुख लेना पतन करनेवाला है। जो दूसरोंको सुख पहुँचाता है, वही अपने लिये सुख तैयार करता है। जो खुद सुख लेना चाहता है और मनमें समझता है कि मैंने दूसरेको ठग लिया, वह वास्तवमें खुद ठगा जाता है!

*** *** ***

श्रोता—संसार झूठा है और भगवान्‌के सिवाय हमारा कोई नहीं है—यह बात हम मानते हैं, पर भीतर दृढ़ता नहीं आ रही है! इसके लिये क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—आप कोई भी बात दृढ़ करना चाहें तो उसकी लगन होनी चाहिये। लगनके बिना काम नहीं चलता। दृढ़ता नहीं आनेसे आपको दुःख कितना होता है? दूसरी बातें आपको अच्छी लगती हैं तो दृढ़ता कैसे आये? दूसरी बातें अच्छी न लगें, एक ही बात अच्छी लगे तो दृढ़ता आ ही जायगी।

लगन लगन सब ही कहैं, लगन कहावै सोय।
नारायन जिस लगन में, तन मन दीजै खोय॥

× × ×

मन में लागी चटपटी, कब निरखूँ घनस्याम।
नारायन भूल्यौ सभी, खान पान बिश्राम॥

एक ही लगन लग जाय तो दृढ़ता जरूर आ जायगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है। वास्तवमें सच्ची लगन नहीं है। दूसरी बातोंकी, रुपयों आदिकी लगन है। रुपये लगनसे नहीं आते, पर भगवान् लगनसे आते हैं। आप उसके लिये लगन लगाते हो, जो प्रारब्धके अधीन है। जो लगनके अधीन है, उसकी परवाह ही नहीं करते! परमात्माकी प्राप्ति केवल लगनसे होती है, उसमें प्रारब्धकी जरूरत नहीं है। परमात्माकी लगन लगेगी तो दूसरी चीजोंमें मोह नहीं रहेगा।

*** *** ***

कामना करना मनुष्यकी दुर्बलता है, कमजोरी है। कामना करना गुलाम होना है, अपना पतन

करना है। कामना करना तुच्छता है, नीचता है। जिसमें कामना नहीं है, वह बादशाहोंका बादशाह है!

चाह गयी चिन्ता मिटी, मनुआँ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिये, सो साहनपति साह॥

निष्कामभाव रखनेवाला संसारपर विजय कर लेता है—'**इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः**' (गीता ५। १९)। कामना रखनेवाला गधेको भी बाप बनाता है! निष्कामभावमें जो लाभ है, वह कामनामें नहीं है। निष्कामभावमें बड़ा आनन्द है। परन्तु जबतक कामनाओंका त्याग नहीं करते, तबतक कामनाओंके त्यागका तत्त्व नहीं समझ सकते। जिसमें कोई भी कामना नहीं है, ऐसे भक्तोंकी कामना भगवान् करते हैं! जैसे किसी वृक्षके कोटरमें आग लगी हुई हो तो वह हरा नहीं हो सकता, ऐसे ही जिसके भीतर कामना है, वह सुखी नहीं हो सकता। जो दुःख पा रहा है, वह कामनाके कारण ही दुःख पा रहा है। कामना न हो तो दुःख है ही नहीं! केवल कामना छोड़नेसे संसारका दुःख मिट जाय!

संसारका महत्त्व कामनाके कारण ही दीखता है। कामना न हो तो संसारकी पोल निकल जाती है! कामनावाला आदमी ऊँचा उठ सकता ही नहीं; क्योंकि वह कामनाओंसे दबा रहता है।

आशाया ये दासा दासास्ते सर्वलोकस्य।
आशा दासी येषां तेषां दासायते लोकः॥

(स्कन्दपुराण, वै० वे० २०। १८)

'जो कामनाके दास हैं, वे समस्त संसारके दास हैं और जिन्होंने कामनाको अपनी दासी बना लिया है, उनके लिये यह सम्पूर्ण जगत् ही दासकी तरह है!'

मनमें कामना होनेसे ही पुनर्जन्म होता है। जिसके मनमें कोई कामना है ही नहीं, वह कहाँ जन्मेगा? और क्यों जन्मेगा?

*** *** ***

एक ध्यान देनेकी बात है कि आप भगवान्‌में मनको तो लगाना चाहते हैं, पर अपनेको लगाना नहीं चाहते! **यह खास समझनेकी बात है कि आप अपने-आपको लगाना चाहो तो मन लग जायगा, पर मन लगाओ तो नहीं लगेगा।** आप तो लगते नहीं और मन लगाना चाहते हैं तो कैसे लगेगा? विवाह होनेपर लड़की आप (खुद) ससुरालकी हो जाती है, मन नहीं लगाती। इसलिये बड़ी सुगमतासे काम हो जाता है। जैसे वह अपने-आपको लगाती है कि 'मैं पीहरकी नहीं हूँ, ससुरालकी हूँ', ऐसे ही आप अपने-आपको भगवान्‌में लगाओ कि 'मैं भगवान्‌का हूँ'। कोई साधु होता है तो मन नहीं लगाता। मेरी विनती है कि आप इस बातको समझो। यह बड़ी मार्मिक बात है! तमाशा नहीं है! **आप मालिक हो। आप स्वयं भगवान्‌में लग जाओ तो शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि सब भगवान्‌में लग जायँगे।**

आपका शरीर माँ-बापका बेटा है, पर आप स्वयं भगवान्‌के बेटे हो। हम भगवान्‌के हैं—यह बात आप मान लो तो आपका सत्संग सफल हो गया! जैसे धनी आदमीके बेटेके भीतर एक गरमी रहती है, राजाके बेटेके भीतर एक गरमी रहती है, ऐसे ही आपके भीतर यह गरमी रहनी चाहिये कि मैं भगवान्‌का बेटा हूँ!

'मैं भगवान्‌का हूँ'—यह मामूली बात नहीं है, बहुत ऊँची बात है! भीतरकी बड़ी मार्मिक बात

है! यह बात सब भाई-बहनोंको धारण कर लेनी चाहिये।

*** *** ***

श्रोता—आजकलके बच्चे बहुत ज्यादा पतनकी तरफ जा रहे हैं! वे माँ-बापकी, बड़ोंकी बात ही नहीं मानते! उनको हम कैसे सही मार्गपर लायें?

स्वामीजी—मूलमें कारण यह है कि बालकोंको स्कूलोंके भरोसे छोड़ देते हैं। उन्हें घरमें शिक्षा देते ही नहीं। पहले बालकोंको माँ-बाप घरमें शिक्षा देते थे। **यह बात ठीक सिद्धान्तकी है कि घरसे जो शिक्षा मिलती है, वह राज्यसे नहीं मिलती, भले ही रामराज्य क्यों न हो!** आपके मनमें तो रुपये इकट्ठे करनेकी धुन लगी हुई है! बालक कहाँ जा रहे हैं, क्या पढ़ रहे हैं—इस तरफ माता-पिता ख्याल करते ही नहीं! प्रह्लाद क्या पढ़ रहा है—इसका हिरण्यकशिपु भी ख्याल रखता था! मैंने खुद देखा है कि छोटा बच्चा माँ-बापको मार रहा है और सब देखकर हँस रहे हैं! इस तरह मारनेकी शिक्षा घरमें ही दे रहे हैं! अब वह बच्चा बड़ा होकर वैसा ही काम करेगा!

आज स्कूलोंमें जो पढ़ाई हो रही है, उसके विषयमें मैंने पूछा है कि पढ़ाईका उद्देश्य क्या है? पर इसका उत्तर सरकारके पास भी नहीं है! आजकलके बालक केवल रुपये कमानेकी बात ही सीखते हैं। रुपये कमानेकी ही धुन लगी हुई है!

जब हम पढ़ते थे तो गुरुजी सदा हमपर निगाह रखते थे और पूछा करते थे कि तुम वहाँ हँसते क्यों थे? दरवाजेपर क्यों खड़े थे? बाहर क्यों खड़े थे? घरोंमें माताएँ लड़कियोंको शिक्षा दिया करती थीं। परन्तु आज न लड़कोंको शिक्षा मिल रही है, न लड़कियोंको! शिक्षाके बिना तो वे पशुकी तरह ही होंगे! पशुओंमें भी जो पशु शिक्षित होता है, उसकी महिमा होती है। आज व्याख्यान देनेवालोंका भी उद्देश्य यह हो गया है कि लोग राजी हो जायँ। लोगोंको राजी करनेके लिये वे गाना-बजाना करते हैं, हँसी-दिल्लगी करते हैं!

*** *** ***

ऐसा कहा जाता है कि भगवान्‌की इच्छाके बिना पत्ता भी नहीं हिलता। परन्तु जो कोई पत्ता हिलाता है, वह भगवान्‌की इच्छा नहीं होती। पत्ता अपने-आप हिलता है, वह भगवान्‌की इच्छा होती है। अतः जबतक मनुष्यमें कर्तृत्व-अभिमान रहता है अर्थात् उसके मनमें किंचिन्मात्र भी 'मैं करता हूँ, मैं भोगता हूँ, मुझे अमुक काम करना है, मुझे अमुक चीज चाहिये'—ऐसा भाव रहता है, तबतक उसके द्वारा होनेवाली क्रिया भगवान्‌की क्रिया नहीं होती। जब मनुष्यका कर्तापन तथा भोक्तापन सर्वथा मिट जाता है, उसको परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति हो जाती है, तब उसकी क्रिया भगवत्प्रेरणासे होती है।

गंगाजीके प्रवाहमें बहकर अनेक गायें, ब्राह्मण मर जायँ तो गंगाजीको पाप नहीं लगता और गंगाजीका जल पीकर अनेक गायें, ब्राह्मण जी जायँ तो गंगाजीको पुण्य नहीं लगता। कारण कि गंगाजीमें न राग है, न द्वेष है, न कर्तापन है, न भोक्तापन है। गीतामें आया है—

यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥

(गीता १८। १७)

'जिसका अहंकृतभाव अर्थात् 'मैं कर्ता हूँ'—ऐसा भाव नहीं है और जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती, वह युद्धमें इन सम्पूर्ण प्राणियोंको मारकर भी न मारता है और न बँधता है।'

अगर ऐसा मान लें कि भगवान् ही सब काम करवाते हैं तो गुरु, शास्त्र आदि सब निरर्थक

हो जायँगे, और 'ऐसा करो, ऐसा मत करो'—यह कहना बनेगा ही नहीं! अगर सब भगवान्‌की इच्छासे ही काम करते हैं तो 'ऐसा करना चाहिये, ऐसा नहीं करना चाहिये'—यह किसको कहा जायगा? आप गहरा विचार करें। 'मैं सुख भोगूँ, दुःख न भोगूँ, मुझे लाभ हो जाय, हानि न हो जाय; मेरा काम ठीक हो, बेठीक न हो'—यह भाव जबतक रहता है, तबतक उसकी क्रिया भगवान्‌के द्वारा कैसे होगी? वह खुदके द्वारा ही होगी।

जो भगवान् कराते हैं, वही हम करते हैं—यह दुर्योधनका मत है। दुर्योधन कहता है—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥

(गर्गसंहिता, अश्वमेध० ५०। ३६)

'मैं धर्मको जानता हूँ, पर उसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं होती और अधर्मको भी जानता हूँ, पर उससे मेरी निवृत्ति नहीं होती। मेरे हृदयमें स्थित कोई देव है, जो मेरेसे जैसा करवाता है, वैसा ही मैं करता हूँ।'

यह राक्षसका मत है, जिसे माननेवालेको दण्ड भोगना पड़ेगा! ऐसा वे कहते हैं, जिनका विचार होता है कि खूब पाप करें, पापोंको करनेमें संकोच न हो! यह नास्तिकपना है।

श्रोता—हम भले ही अपनी मरजीसे पाप करते हों, पर पाप करनेकी सामर्थ्य तो भगवान्‌से ही मिलती है!

स्वामीजी—चाहे वेद पढ़ो और चाहे शिकार करो, प्रकाश तो सूर्यसे ही मिलता है। प्रकाशके बिना मनुष्य वेद कैसे पढ़ेगा? शिकार कैसे करेगा? परन्तु सूर्य वेद पढ़ाता है या शिकार कराता है क्या? सूर्य कहता है कि तुम वेद पढ़ो या शिकार करो? उसका किसी क्रियाको करने अथवा न करनेका आग्रह, पक्षपात है ही नहीं। इसी तरह प्रकाश, सामर्थ्य भगवान्‌से ही मिलती है, पर भगवान्‌में किसी क्रियाको करने अथवा न करनेका आग्रह, पक्षपात है ही नहीं।

जबतक मनुष्यके भीतर स्वार्थ और अभिमान है, सुखभोगकी इच्छा है, तबतक वह शुभ कर्म (पुण्य) करे तो भी बँधेगा, अशुभ कर्म (पाप) करे तो भी बँधेगा। शुभ कर्मसे वह स्वर्गादिमें जायगा, अशुभ कर्मसे नरकादिमें जायगा, कर्मोंसे छुटकारा नहीं होगा। **जबतक मनुष्यमें सुख पानेकी तथा दुःख मिटानेकी इच्छा है, तबतक उसके द्वारा होनेवाला कर्म भगवान्‌की प्रेरणासे होनेवाला नहीं माना जायगा। उसके द्वारा होनेवाला प्रत्येक कर्म बन्धनकारक होगा, भले ही वह यज्ञ करे, दान करे, तीर्थ करे, व्रत करे, तप करे!**

श्रोता—हम अच्छा कर्म करना चाहते हैं, लेकिन फिर भी हमसे बुरा कर्म हो जाता है तो कोई-न-कोई अन्दरसे धक्का देता है, तभी बुरा कर्म करते हैं!

स्वामीजी—यही प्रश्न अर्जुनने भगवान्‌से किया है कि मनुष्य पाप करना नहीं चाहता, फिर भी पाप कर बैठता है तो कौन पाप कराता है (गीता ३। ३६)? भगवान्‌ने उत्तर दिया कि कामना और क्रोध ही पाप कराते हैं। इसमें एक मार्मिक बात है कि मनुष्यमें पापकी इच्छा तो नहीं है, पर सुखकी, भोगकी इच्छा तो है ही! वह भोगकी इच्छा पाप कराती है।

मनुष्य पाप नहीं करना चाहता; क्योंकि पापका फल दुःख होता है। इसलिये मनुष्य दुःख तो नहीं भोगना चाहता, पर भीतरमें रुपयोंका जो लोभ है, वह लोभ उससे पाप कराता है। कामना मनुष्यको अन्धा कर देती है। काम, क्रोध और लोभ—ये तीनों नरकके दरवाजे हैं (गीता १६। २१)।

जबतक ये तीनों रहेंगे, तबतक मनुष्य पापोंसे, नरकोंसे बच नहीं सकता।

*** *** ***

श्रोता—एक स्त्रीका पति परस्त्रीगामी है। इससे वह बहुत दुःखी है कि क्या करूँ? क्या संन्यास ले लूँ?

स्वामीजी—ज्यादा-से-ज्यादा त्याग कर सकती हो। पर संन्यास नहीं लेना चाहिये। आज स्त्री दूसरी जगह जाकर ठीक रह जाय, यह मुश्किल है! समय बहुत खराब है! स्त्रीको किसी साधु आदिके पास जाना उचित नहीं है। भाई अगर सहमत हो तो भाईके पास रहो अथवा पिताके पास रहो। दूसरी जगह मत जाओ।

श्रोता—आप कहते हैं कि जिसने गर्भपात किया हो, उसके हाथका पानी भी नहीं पीना चाहिये। पर हमें लोग आकर कहते हैं कि जिसने गुरु नहीं बनाया हो, उसके हाथका पानी नहीं पीना चाहिये।

स्वामीजी—मैं तो यह कहता हूँ कि जिसने गुरु बनाया हो, उसके हाथका पानी नहीं पीना चाहिये! आज कोई आदमी गुरु बनने लायक है ही नहीं! गुरु वह होता है, जो शिष्यका उद्धार कर सके। अगर उद्धार करनेकी ताकत न हो तो गुरु नहीं बनना चाहिये। जबतक जीवका उद्धार करनेकी सामर्थ्य न हो, तबतक उसको गुरु बननेका अधिकार नहीं है। वह गुरु बनता है तो पाप लगता है। आप हमारी *'क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?'* पुस्तक पढ़ो।

आजकल गुरु खुद तो चेलेका उद्धार कर सकते नहीं और उसे दूसरी जगह जाने देते नहीं। वह दूसरी जगह चला जाय तो उसे डराते-धमकाते हैं। उससे गुरु नाराज हो जाते हैं, गुरुभाई नाराज हो जाते हैं। एक चेला गुरुको छोड़कर दूसरेके सत्संगमें चला गया तो उसके घरमें आग लगवा दी! यह ऋषिकेशकी बीती हुई घटना है। सैकड़ों-हजारों लोग उसे अपना गुरु मानते हैं! ऐसे गुरुसे कल्याण हो जायगा—यह बात हमें जँचती नहीं!

आप भगवान्‌के साक्षात् अंश हो। मेरी तो यह प्रार्थना है कि आप किसी गुरुके फँदेमें न फँसकर सच्चे हृदयसे भगवान्‌के शरण हो जाओ। भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भगवान् जगत्‌के गुरु हैं—**'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्'**। भगवान्‌को अपना गुरु मानो, आपका कल्याण होगा। किसी मनुष्यके फेरमें मत पड़ो। आजकल ठगाई बहुत होती है!

*** *** ***

भगवान्‌की प्राप्ति करना अपना खास काम है। उसकी प्राप्तिके लिये भगवान्‌को अपना मानना आवश्यक है। संसार अपना है—यह मानना बाधक है। संसारका काम करो, उपकार करो, सेवा करो, वस्तुएँ रखो, उनका उपार्जन करो—इसकी कोई मनाही नहीं है, पर इनको अपना मत मानो। सांसारिक वस्तुओंसे मेरा कुछ भला हो जायगा—यह आशा बिल्कुल मत रखो। जो चीज मिलती है और बिछुड़ जाती है, वह अपनी नहीं होती—इस बातको आप निश्चय करके भीतर बैठा लो। **मैं बार-बार कहूँगा और आप बार-बार सुनोगे कि अनन्त ब्रह्माण्ड हैं, उनमें तिल-जितनी चीज भी अपनी नहीं है। पर भगवान् पूरे-के-पूरे अपने हैं!** भगवान् हरेक आदमीको पूरे-के-पूरे मिल सकते हैं, पर संसार एक आदमीको भी पूरा नहीं मिल सकता। अगर मिल भी जाय तो एक आदमीकी भी पूर्णता नहीं होगी। न लखपतिको शान्ति है, न करोड़पतिको शान्ति है, न अरबपतिको शान्ति है, न खरबपतिको शान्ति है। सब-के-सब अधूरे हैं! पूर्ण शान्ति परमात्माकी प्राप्तिमें ही है।

*** *** ***

एक सिद्धान्त है कि जो शास्त्रोंका, पुराणोंका, वेदोंका आदर करता है, उसका स्वयंका आदर होता है। इनका निरादर करनेसे स्वयंका ही निरादर होता है, जिसका परिणाम बहुत खराब होता है। इसलिये गीता, रामायण, सहस्रनाम, हनुमानचालीसा आदिको नीचे नहीं रखना चाहिये। नीचे रखना ही हो तो कपड़ा रखकर उसपर रखो, नहीं तो अपनी गोदमें रखो, हाथोंमें रखो। यह बात आप सदाके लिये, उम्रभरके लिये याद कर लो। परमात्मा सब जगह परिपूर्ण हैं। पुस्तकें परमात्माका स्वरूप हैं। जिस ज्ञानसे हमें तत्त्वकी प्राप्ति होती है, मुक्ति होती है, कल्याण होता है, वह ज्ञान गीता आदिमें भरा हुआ है। इसलिये किसी भी पूजनीय पुस्तक, वस्तु आदिका तिरस्कार, अपमान, निरादर कभी मत करना। यह बात आपके भीतर स्वतः-स्वाभाविक पैदा होनी चाहिये। स्वतः पैदा न हो तो सीख लो, याद कर लो।

शौचालयमें (सीटपर) अँग्रेजी अक्षर लिखे रहते हैं, तो शौच जानेमें मेरेको मुश्किल होती है! भले ही अँग्रेजी अक्षर हों, पर है तो सरस्वती ही! सरस्वतीका तिरस्कार मुझे अच्छा नहीं लगता। जूतोंमें भी अँग्रेजी अक्षर लिखे रहते हैं! इससे मेरेको बड़ा संकोच होता है! पर करें क्या! मेरे मनमें ये बातें बहुत खटकती हैं। जहाँतक हो सके, अपनेको बचाता हूँ। देवनागरी अक्षरोंका तो विशेष आदर करना चाहिये। इन अक्षरोंमें धर्मशास्त्र, वेद, पुराण, स्मृतियाँ भरी हुई हैं! ऐसा दूसरी लिपियोंमें नहीं है। देवनागरी अक्षरोंका जितना आदर है, उतना औरोंका नहीं है। इसलिये इनका आदर विशेष होना चाहिये। पुस्तकके ऊपर बैठना, छपा हुआ कागज (अखबार आदि) नीचे बिछाकर उसके ऊपर बैठना सरस्वतीका निरादर है। परन्तु जिनकी ऐसा करनेकी आदत ही हो गयी, वे क्या समझें?

विद्याका आदर नहीं करोगे तो अविद्यामें बँधोगे और दुःख पाओगे। इसी तरह माता, पिता, गुरुजन, साधु, ब्राह्मण, गाय आदिका भी आदर करो। जहाँतक बने, गायको जूठन मत दो। पवित्र चीज दो। इनका निरादर करनेसे खुदका निरादर होगा। इनका आदर धर्मका आदर है। आप धर्मका नाश करोगे तो धर्म आपका नाश करेगा, और आप धर्मकी रक्षा करोगे तो धर्म आपकी रक्षा करेगा—**'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः'** (मनुस्मृति ८। १५)।

जो धर्मका आदर करता है, उसका आदर स्वतः होगा, स्वाभाविक होगा। वह जहाँ जायगा, वहीं उसका आदर होगा। एक ब्राह्मण सज्जन विदेश गये। वे धोती पहनते थे। उनको देखकर पहले वहाँके लोग हँसते थे। पर बादमें सब उनका आदर करने लग गये कि यह सच्चा आदमी है।

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌पर विश्वास कैसे हो?

स्वामीजी—नाशवान् चीजोंपर श्रद्धा और प्रेम जितने ज्यादा होंगे, उतने ही भगवान्‌पर श्रद्धा और प्रेम कम होंगे—यह नियम है। **अगर आप भगवान्‌पर विश्वास चाहते हैं तो नाशवान् चीजोंपर विश्वास कम करो। नाशवान् चीजोंसे प्रेम करोगे, उनको महत्त्व दोगे तो अविनाशीसे प्रेम कैसे होगा?** नाशवान्‌की सेवा करो, पर विश्वास मत करो। आप स्वयं विचार करो, अगर संसारका धन, भोग, मान-बड़ाई, आदर-सत्कार आपको अच्छे लगते हैं तो भगवान् अच्छे कैसे लगेंगे?

दो चीजें हैं—एक आप स्वयं हो, एक आपका शरीर है। आप अलग हैं, शरीर अलग है। मरते समय शरीर यहीं पड़ा रहता है, आप चले जाते हैं। स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों शरीर आपसे अलग हैं। यह जानना (विवेक) सब साधकोंके लिये बहुत जरूरी है। इसलिये गीताने सबसे पहले इसी बातका विवेचन किया है।

आपका नाशवान्‌में मोह हो गया, अब भगवान्‌में प्रेम कैसे हो? नाशवान्‌में दो चीजें हैं—क्रिया और पदार्थ। क्रियाका आरम्भ और अन्त होता है। पदार्थकी उत्पत्ति और विनाश होता है। परन्तु जितने सन्त-महात्मा हुए हैं, जितने भजनानन्दी हुए हैं, उनकी वाणीमें क्रिया और पदार्थ—इन दोका ही आदर मुख्य मिलता है! जितना सन्त-मत है, उसमें यह दो बात ही मुख्य दीखती है! वास्तवमें भगवान्‌में प्रेम तब होगा, जब जड़से ऊँचा उठेंगे। जड़ताका आदर करते हुए भगवान्‌में प्रेम कैसे होगा? जड़ चीजें सेवाके लिये हैं, आपके लिये हैं ही नहीं।

*** *** ***

श्रोता—इस कलियुगमें अच्छे सन्तकी क्या पहचान है कि जिसके अनुसार चलकर हम अपना कल्याण कर सकें?

स्वामीजी—गीतामें भगवान्‌ने अपनेको सुलभ बताया है—'**तस्याहं सुलभः पार्थ**' (गीता ८। १४), पर महात्माको दुर्लभ बताया है—'**स महात्मा सुदुर्लभः**' (गीता ७। १९)। भगवान् सब जगह परिपूर्ण हैं, इसलिये वे सबके लिये सुलभ हैं, चाहे कहीं प्राप्त कर लो। महात्मा भी स्वरूपसे भगवान्‌के साथ एक होनेसे सब जगह हैं, पर उनको शरीर मानकर कोई उनका संग करना चाहे तो नहीं कर सकते। इसलिये वे दुर्लभ हैं।

महात्माकी पहचान तो हम नहीं कर सकते, पर अपनी पहचान कर सकते हैं कि उनका संग करनेसे, उनका दर्शन करनेसे, उनके साथ रहनेसे हमारेपर क्या असर पड़ता है? हमारी वृत्तियाँ कैसी होती हैं? हमारा भाव कैसा होता है? उनके आचरण देखें तो वे मान-बड़ाई नहीं चाहते, आदर-सत्कार नहीं चाहते, रुपये नहीं चाहते, कपड़ा नहीं चाहते, कोई चीज नहीं चाहते, नमस्कार भी नहीं चाहते। उनके भीतर कोई चाहना नहीं है। उनसे बिना पूछे अपने-आप हमारे भीतरके प्रश्नोंका उत्तर मिल जाता है, सन्देह दूर हो जाते हैं। उनका व्याख्यान सुनते हैं तो मालूम होता है कि वे मेरी बात ही कह रहे हैं, मेरेको ही समझा रहे हैं। उनके संगसे शान्ति मिलती है, परमात्माकी याद ज्यादा आती है, आस्तिक भाव पैदा होता है, धार्मिक भाव पैदा होते हैं, दैवी सम्पत्ति आती है, आसुरी सम्पत्ति नष्ट होती है, खराब-खराब आचरण नष्ट होते हैं। उनकी बातें सुननेसे, उनकी पुस्तकें पढ़नेसे शान्ति मिलती है। ज्यों उनका संग करते हैं, अच्छी बातें सुनते हैं, त्यों हमारेमें फर्क पड़ता है। उनके संगसे हमारा, घरका, मोहल्लेका, गाँवका सुधार होता है। ऐसे महात्माका संग करना चाहिये।

वास्तवमें महात्माकी पहचान वही कर सकता है, जो महात्मासे बड़ा हो। कई वर्ष पहले ऋषिकेशमें एक सज्जन आये। उन्होंने मेरेसे पूछा कि यहाँ अच्छे-अच्छे सन्त रहते हैं, आप बताओ कि उनमें सबसे अच्छा सन्त कौन है? मैंने कहा कि आपकी बात मेरी समझमें नहीं आयी! उन्होंने वही बात दूसरी बार कही तो मैंने फिर कहा कि आप जो कहते हैं, वह तो मैंने सुन लिया, पर बात मेरी समझमें नहीं आयी! वे बोले कि समझमें क्यों नहीं आयी? मैंने कहा कि जब आप मेरेसे पूछते हो कि कोई ऊँचा महात्मा बताओ तो मैं महात्माकी परीक्षा करनेवाला (सबसे ऊँचा) हुआ! मैं आपको अच्छा महात्मा बताऊँ और आप मेरे कहनेसे उसको महात्मा मानकर उसका संग करोगे, मेरा संग नहीं करोगे—यह बात मेरी समझमें नहीं आयी!

आप अच्छी बातें सब जगह सुनो, पर गुरु-शिष्यका सम्बन्ध मत जोड़ो। सम्बन्ध जोड़नेसे बड़ी मुश्किल होती है! दूसरी जगह तो जा सकते नहीं और वे कल्याण कर सकते नहीं! आजकलके जमानेमें ठगाई बहुत है। नकली चीजें बहुत हो गयी हैं। साधु भी नकली, गृहस्थ भी नकली, ब्राह्मण भी नकली, क्षत्रिय भी नकली, वैश्य भी नकली! असलीकी पहचान होती नहीं। जिस गुरुके मनमें

चेला बनानेकी इच्छा होती है, वह वास्तवमें गुरु नहीं, चेलादास है। जिसके मनमें रुपयोंकी इच्छा है, जिसको रुपये चाहिये, वह रुपयोंका दास है। जिसे मान-बड़ाई चाहिये, वह मान-बड़ाईका दास है। वह आपका कल्याण कैसे करेगा?

श्रोता—अज्ञानतासे हम किसीके चेले बन गये, अब क्या करें?

स्वामीजी—भजन करो! डरो मत! उन गुरुजीको कपड़ा, रुपया दे दो, सेवा कर दो। यह भी आपको पसन्द न आये तो मत दो।

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते॥

(महाभारत, उद्योग० १७८। ४८)

'यदि गुरु भी घमण्डमें आकर कर्तव्य और अकर्तव्यका ज्ञान खो बैठे और कुमार्गपर चलने लगे तो उसका भी त्याग कर देनेका विधान है।'

ऐसे गुरुका त्याग कर दो, पर निन्दा, विरोध मत करो। आपको पाप नहीं लगेगा। अगर आपको पाप लगे तो मेरेको दे देना!

*** *** ***

श्रोता—काम, क्रोध, लोभ, अहंकार कैसे दूर हों?

स्वामीजी—भीतरमें जड़ चीजोंकी जो चाहना है, वह मिटनेसे ये मिटेंगे। ये सब-के-सब दोष नाशवान्‌की इच्छापर निर्भर हैं। नाशवान्‌को आप नहीं छोड़ते, ये आपको नहीं छोड़ते!

अभी हमारा भाई और बहनोंको अनुभव करानेके लिये कुछ चेष्टा करनेका विचार हुआ है। परन्तु सच्ची लगनवाले आदमी कम हैं! सच्ची जिज्ञासावाले मनुष्योंका अभाव है! बातें बना लेंगे, अच्छी-अच्छी बातें कह देंगे, पर गहरे उतरकर समझेंगे नहीं! एक बात आप मान लें कि जो मिलता और बिछुड़ता है, वह अपना नहीं होता। शरीर, कुटुम्ब, घर, रुपये आदि सब मिले हैं और बिछुड़ जायँगे। यह इतनी दामी बात है कि अगर अनुभवमें आ जाय तो आप निहाल हो जायँ! इसका अनुभव करनेके आप अधिकारी हैं, योग्य हैं, पर भीतरमें लगन नहीं है!

*** *** ***

श्रोता—कर्मयोग, ज्ञानयोग या भक्तियोगमें कौन-से मार्गका आश्रय लें कि भगवान्‌का अनुभव जल्दीसे हो जाय?

स्वामीजी—तीनों ही मार्गोंसे जल्दी अनुभव होता है।

श्रोता—इन तीनोंके बिना भी हो सकता है क्या?

स्वामीजी—इन तीनोंके अलावा कोई मार्ग नहीं दीखता। भागवतमें साफ लिखा है—

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयो विधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्॥

(श्रीमद्भा० ११। २०। ६)

'(भगवान् कहते हैं—) अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्योंके लिये मैंने तीन योग (मार्ग) बतलाये हैं—ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग। इन तीनोंके अतिरिक्त अन्य कोई कल्याणका मार्ग नहीं है।'

अन्य साधन भी इन तीनोंके ही अन्तर्गत आ जाते हैं। भगवान्, जीव और जगत्—ये तीन ही

हैं। जिसकी विशेष श्रद्धा जगत्‌में, भौतिक चीजोंमें है, उसके लिये कर्मयोग है। जो अपनी आत्माको ही विशेषतासे मानता है, उसके लिये ज्ञानयोग है। जो भगवान्‌को विशेषतासे मानता है, उसके लिये भक्तियोग है। कर्मयोग भौतिक साधना है, ज्ञानयोग आध्यात्मिक साधना है, और भक्तियोग आस्तिक साधना है। करना, मानना और जानना—ये तीन ही हैं। कर्मयोगमें 'करना' मुख्य है, ज्ञानयोगमें 'जानना' मुख्य है और भक्तियोगमें 'मानना' मुख्य है।

श्रोता—हमारे मनमें यह बात जँची हुई है कि भगवान् गुरुके बिना मिल ही नहीं सकते, पर आपने कहा कि गुरुके साथ सम्बन्ध मत जोड़ो, तो हम क्या करें?

स्वामीजी—मैंने तो अपनी सम्मति दी है, आप जैसी मरजी आये, करो! सम्बन्ध जोड़नेसे मनुष्य फँस जाता है। मेरे विचारसे किसीसे सम्बन्ध जोड़नेपर आप फँस जाओगे, इसलिये मैंने अपनी सम्मति दी है। पर आपका शौक हो तो करो! आपकी मरजी हो तो गुरु बनाओ, मैं नाराज नहीं होऊँगा। मैं जब आपकी पूरी बात माननेके लिये तैयार नहीं हूँ तो आप मेरी बात पूरी मानो—यह मैं क्यों कहूँगा! मैं आपकी पूरी बात मानूँ, आपका चेला बन जाऊँ, आप जैसा कहें, वैसा करूँ—ऐसी मेरी हिम्मत नहीं है। फिर मैं क्यों कहूँ कि आप मेरी ही बात मानो, मेरा ही चेला बन जाओ! यह कहना न्याय नहीं है। मैंने अपनी सम्मति बतायी है कि सत्संग करो, पर किसीके पल्ले मत बँधो। जहाँ विशेष बात मिले, आपको सन्तोष मिले, आपकी वृत्तियाँ ठीक हो जायँ, दैवी सम्पत्ति बढ़े, शंकाएँ मिट जायँ, वहाँ आप सत्संग करो। आप अपना कल्याण कर लो तो बड़े आनन्दकी बात है, बड़ी खुशीकी बात है! **मेरेसे बिना पूछे, आप अपना कल्याण कर लो तो हम दूर बैठे राजी हो जायँगे! हमारे मनमें प्रसन्नता हो जायगी!**

हमें ऐसा महापुरुष कोई दीखता नहीं! हमारी श्रद्धा नहीं बैठती! हम चाहते हैं कि ऐसा कोई महापुरुष हो, जिससे कोई बात पूछें, पर हमें कोई दीखता ही नहीं! आप बता सकते हैं कि अमुक-अमुक महात्मा हैं। यह मैं भी जानता हूँ, पर मेरेको आध्यात्मिक तत्त्वको ठीक जाननेवाला कोई दीखता नहीं! ठगाई बहुत दीखती है! अच्छा साधु मिलना, अच्छा ब्राह्मण मिलना, अच्छा विद्वान् मिलना अब असम्भव-सा हो रहा है! वर्तमानमें बहुत ज्यादा पतन हुआ है।

गीताके विषयमें जाननेकी मेरी इच्छा रहती है, पर गीताको गहरा जाननेवाला मेरेको कोई मिला नहीं! मेरेको गहरी, तात्त्विक बात पूछनेवाला भी नहीं दीखता! अच्छे-अच्छे प्रचारक हैं, संस्थाएँ हैं, जिनको मैं जानता हूँ, पर उनमें भी गहरी बातें जाननेवाले, आध्यात्मिक मार्गमें गहरे उतरे हुए आदमी नहीं दीखते! कोई जानकार आदमी मिले तो मुझे बहुत आनन्द होता है! कोई जिज्ञासु भी मिले तो मनमें प्रसन्नता होती है।

अगर आप परमात्माकी प्राप्ति चाहते हैं, अपना कल्याण चाहते हैं तो एक सिद्धान्तकी बात है कि स्थूल, सूक्ष्म और कारण—ये तीनों शरीर केवल सेवाके लिये हैं। इन शरीरोंके द्वारा परमात्मप्राप्ति अथवा आध्यात्मिक उन्नति कभी नहीं होगी। जबतक मनमें इनका भरोसा है, तबतक कल्याण नहीं होगा।

*** *** ***

लड़का अगर अच्छा होता है तो एक कुलको पवित्र करता है, पर लड़की अगर अच्छी होती है तो दो कुलोंको पवित्र करती है। राजा जनक सीताजीसे कहते हैं—***'पुत्रि पबित्र किए कुल दोऊ'*** (मानस, अयोध्या० २८७। १)। लड़का अगर बुरा होता है तो एक कुलको कलंक लगाता है, पर

लड़की अगर बुरी होती है तो दो कुलोंको कलंक लगाती है। इसलिये कन्याओंको अपने धर्मका ठीक पालन करना चाहिये। इसके लिये मैंने एक उपाय बताया है कि सुबह-शाम सात-सात बार 'सीता माता' और 'माता कुन्ती' का नाम लें। इसके लिये मैं छोटी-बड़ी सभी बहनोंसे प्रार्थना करता हूँ कि दोनों समय आप सात-सात बार प्रेमसे ये नाम लें तो आपका जीवन बहुत पवित्र हो जायगा। परन्तु भीतरसे आपका विचार होना चाहिये कि हम सीता माताकी तरह बन जायँ। अनुसूयाजीने सीताजीसे कहा है कि तुम्हारा नाम लेनेसे स्त्रियाँ पतिव्रता हो जायँगी—***'सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं'*** (मानस, अरण्य० ५-ख)। ऐसे ही सभी भाई सुबह-शाम सात-सात बार प्रेमसे 'रामजी' का नाम लें तो वे सन्त बन जायँगे।

कोई भी आफत आये तो 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। **'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'—यह एक मन्त्र है, जिसे सब भाई-बहन याद कर लो और बार-बार कहते रहो।** सुबह उठकर, स्नान करके, नित्य-नियम करके, दिनमें, शाममें, रात्रि सोते समय—इस प्रकार दिनमें पाँच-सात बार नियमसे 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'—ऐसा कहते रहो तो आप देखो कि आपके जीवनमें फर्क पड़ता है कि नहीं पड़ता! भगवान्‌की स्मृति रहनेसे सम्पूर्ण विपत्तियोंका नाश हो जायगा—**'हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्'** (श्रीमद्भा० ८। १०। ५५)। आपका अन्तःकरण शुद्ध, निर्मल हो जायगा। भगवान्‌के साथ आपका सम्बन्ध जुड़ जायगा। घरोंमें रोजाना रामायण (श्रीरामचरितमानस)-का पाठ करो तो कोई विघ्न-बाधा नहीं होगी। आपका जीवन शुद्ध, निर्मल हो जायगा। जो एक सौ आठ बार रामायणका पाठ कर लेता है, उसका भगवान्‌के साथ विशेष सम्बन्ध हो जाता है।

श्रोता—एक तरफ तो इलाहाबादका कुम्भ-स्नान है और दूसरी तरफ यह सत्संग है, तो कल्याणकामी साधकके लिये ज्यादा लाभ किससे होता है?

स्वामीजी—सत्संगसे ज्यादा लाभ होता है। यद्यपि कुम्भ कोई मामूली नहीं है, तथापि सत्संगसे जो लाभ होता है, वह कुम्भसे नहीं होता। करके देख लो!

*** *** ***

भगवान् सबके परम पिता हैं और सबके हृदयमें रहते हैं। हमारे माता-पिता, भाई-बन्धु आदि सब कुछ भगवान् ही हैं। सत् भी वे ही हैं और असत् भी वे ही हैं। ऐसे भगवान्‌को याद न करना गलती है। उनको याद करनेके सिवाय कुछ नहीं करना है। उनको याद करनेमात्रसे जन्म-मरणसे मुक्त हो जायँगे। इसलिये भगवान् कहते हैं कि सब समयमें मेरा स्मरण कर—**'सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर'** (गीता ८। ७)।

भगवान्‌के समान अपना कोई नहीं है। एक ममता होती है, एक आत्मीयता। संसारमें ममता होती है, आत्मीयता नहीं होती। भगवान्‌में आत्मीयता होती है। उनको अपना मानना है और केवल याद करना है। याद रखनेमात्रसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाय! इतनी सस्ती चीज संसारमें कोई नहीं है। ऐसे भगवान्‌को याद नहीं करते—यह बहुत बड़ी गलती है। इस गलतीका ही फल है कि तरह-तरहके दुःख पा रहे हैं। भगवान्‌की विस्मृति ही सब दुःखोंका मूल है। भगवान् सदा साथ रहनेवाले हैं, हमारे हितैषी हैं, पर उनका मूल्य है केवल याद करना! वे सबसे श्रेष्ठ और सबसे सुगम हैं।

सब समय भगवान्‌को याद करनेका उपाय है—उसीका हो जाय। जैसे विवाह होनेपर कन्या पतिकी हो जाती है, उसकी अहंता बदल जाती है कि मैं ससुरालकी हूँ, ऐसे आप अपनी अहंताको बदल दें कि मैं तो भगवान्‌का हूँ। मीराबाईने यह बात ठीक समझ ली और काममें ले ली कि ***'मेरे तो***

गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'। वास्तवमें एक भगवान्‌से ही सम्बन्ध है, बाकी सब सम्बन्ध बनावटी हैं।

*** *** ***

परमात्माकी प्राप्तिमें युक्तियाँ, क्रियाएँ मुख्य नहीं होतीं, प्रत्युत हृदयकी लालसा, लगन मुख्य होती है। प्यास लगती है तो जलको याद करना नहीं पड़ता, स्वतः याद आती है। इस तरह स्वतः भगवान्‌की याद आनी चाहिये। भगवान् कैसे मिलें! क्या करें! किससे पूछें! यह लालसा मुख्य होनी चाहिये। लालसा जितनी मुख्य होगी, उतना ही काम जल्दी होगा। लालसा होनेपर जो बात मिलती है, वह बात भीतर बैठ जाती है। जैसे भूखेको भोजन और प्यासेको जल अच्छा लगता है, ऐसे ही भगवान्‌की उत्कण्ठा जाग्रत् होनेपर भगवान् अच्छे लगते हैं, प्यारे लगते हैं, मीठे लगते हैं। भगवान्‌के सिवाय दूसरी बात सुहाती नहीं। कोई बढ़िया व्याख्यान सुनाये तो उसमें मन लगता नहीं। वृत्रासुर भगवान्‌से कहता है—

अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥

(श्रीमद्भा० ६। ११। २६)

'जैसे पक्षियोंके पंखहीन बच्चे अपनी माँकी प्रतीक्षा करते हैं; जैसे केवल दूधपर निर्भर रहनेवाले भूखे बछड़े अपनी माँका दूध पीनेके लिये आतुर रहते हैं और जैसे विरहिणी पतिव्रता स्त्री अपने पतिसे मिलनेके लिये उत्कण्ठित रहती है, वैसे ही हे कमलनयन! मेरा मन भी आपके दर्शनके लिये छटपटा रहा है।'

ऐसी लगन लगाओ तो भगवान्‌की प्राप्ति एकदम हो जाय! भगवान् पिघल जायँ! आजकल कलियुगमें भगवान् बहुत जल्दी पिघलते हैं। जैसे आजकल वस्तुएँ महँगी हो गयीं और रुपया सस्ता हो गया, ऐसे ही भगवान् आजकल सस्ते हो गये!

विचार करके उत्कण्ठाको पैदा भी कर सकते हैं। सत्संग करते कितने वर्ष हो गये, अभीतक भगवान्‌की प्राप्ति नहीं हुई! भगवान्‌की प्राप्ति नहीं की तो क्या किया! इस तरह बार-बार विचार करे तो उत्कण्ठा जाग्रत् हो सकती है। दूसरी बात, संसार नाशवान् है—इस बातकी तरफ ज्यादा ख्याल करो। यह कभी स्थिर नहीं रहता।

पहले तो मनुष्यशरीर मिलना दुर्लभ है। मनुष्यशरीर मिल जाय तो भगवत्प्राप्तिकी, अपने कल्याणकी लालसा होना दुर्लभ है। यह लालसा भी जाग्रत् हो जाय तो असली बात बतानेवाला दुर्लभ है। कथा-सत्संग करनेवालोंमें भी असली तत्त्वकी बात बतानेवाले बहुत दुर्लभ हैं। हमने कई आदमियोंसे पूछा भी है कि कोई अच्छे जानकार सन्त हों तो हम जाकर उनसे मिलें, बात करें। पर ऐसा कोई दीखता ही नहीं! आप मानो चाहे न मानो, अच्छे सन्त मिलना बहुत मुश्किल है! आप जगह-जगह भटको तो इसका पता लगे!

*** *** ***

जिसको प्राप्त करना हो, उसीकी जातिका बनना पड़ता है। जो विद्यार्थी बनता है, वही पढ़ता है। इसी तरह परमात्मतत्त्वको प्राप्त करना हो तो अपनेको निराकार मानना होगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि

नहीं मानना होगा। स्त्री-पुरुष भी नहीं मानना होगा। परमात्माके अंश होनेसे हमारा सम्बन्ध परमात्माके साथ है। परमात्मा निराकार हैं; अतः निराकार ही हमारा स्वरूप है। हमारा स्वरूप साकार नहीं है। अतः अपनेको निराकार ही मानना होगा। भगवान् तो साकार भी हैं। हम भगवान्‌को साकार, निराकार, सगुण, निर्गुण सब मानते हैं। पर आपका जो स्त्री-पुरुष रूपसे जो साकाररूप है, यह ऊपरका चोला है, यह साधक नहीं है। **जो अपनेको स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि मानता है, वह साधक नहीं होता। साधक शरीर नहीं होता।**

वास्तवमें निराकार-साकार दो चीज नहीं है। निराकार ही साकार होता है, साकार ही निराकार होता है। पृथ्वी साकार है। इसमें जो गन्ध है, वह निराकार है। पृथ्वी, तेज, जल, वायु और आकाश—ये पाँचों महाभूत साकार भी हैं, निराकार भी।

मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ, मैं गृहस्थ हूँ, मैं साधु हूँ आदि मान्यताएँ व्यवहारमें तो ठीक हैं, पर परमात्मप्राप्तिमें बाधक हैं। परमात्मप्राप्तिमें जैसे 'मैं ब्राह्मण हूँ'—यह बाधक है, ऐसे ही 'मैं मेहतर हूँ'—यह भी उसीके बराबर बाधक है। ये सब ऊपरके चोले हैं। भीतरसे सब परमात्माके अंश हैं।

*** *** ***

श्रोता—खास भूल क्या है?

स्वामीजी—खास भूल यही है कि संसार अपना नहीं है, उसको तो अपना मान लिया और भगवान् अपने हैं, उनको अपना नहीं माना। जो हमारे नजदीक-से-नजदीक हैं, उन भगवान्‌को तो छोड़ दिया और जो दूर-से-दूर है, उस संसारको पकड़ लिया—यह खास भूल है।

मेरे मनमें आती है कि आप एक बात तो मान लो कि भगवान् हमारे हैं। भगवान्‌के सिवाय दूसरा कोई हमारा है ही नहीं। वे जैसे हमारे हैं, वैसा हमारा कोई है ही नहीं—

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥

(मानस, किष्किन्धा० १२। १)

*** *** ***

श्रोता—पहले आपने बताया कि भगवान्‌के शरण होकर नामजप करो, फिर आपने बताया कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'—यह बार-बार कहते रहो, अब आप बताते हैं कि भगवान् मेरे हैं—ऐसा मान लो, तो कौन-सा साधन करें?

स्वामीजी—जो अब बताते हैं, वह करो। सभी साधन श्रेष्ठ हैं, पर भगवान् मेरे हैं—यह भगवान्‌के नजदीक पड़ता है। **उपासनामें यह बात है कि हम जितना भगवान्‌के नजदीक होंगे, उतनी उपासना बढ़िया होगी।**

श्रोता—देवताओंकी पूजा करनी चाहिये या नहीं?

स्वामीजी—करनी चाहिये, पर वह पूर्ण नहीं है। भगवान्‌की आज्ञा समझकर देवताओंकी पूजा कर देनी चाहिये। जो परमात्माकी प्राप्ति चाहते हैं, उनको सकाम उपासना बिल्कुल नहीं करनी चाहिये। पारमार्थिक उन्नति चाहनेवालोंको कामना-पूर्तिके लिये हनुमानचालीसा, सुन्दरकाण्डका पाठ बिल्कुल नहीं करना चाहिये।

श्रोता—जीवन्मुक्त होनेके लिये क्या करें?

स्वामीजी—अगर जीवन्मुक्त होना चाहते हो तो जड़ताका सर्वथा त्याग करो। करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं, उनमें तिल-जितनी चीज भी अपनी नहीं है। जड़ चीज हमारे बिल्कुल कामकी नहीं है। नित्य रहनेवाले एक परमात्मा ही हमारे कामके हैं। आप जीवन्मुक्त हो जाओगे।

जीवन्मुक्तसे भी बढ़कर है भगवान्‌का प्रेमी! भगवान्‌में प्रेम सबसे बढ़िया है, पर जिसके मनमें कामना भरी है, वह प्रेमी नहीं हो सकता। जिसके भीतर कामना, राग-द्वेष, काम-क्रोध-लोभ, ईर्ष्या, पाखण्ड, दिखावटीपना आदि भरे हैं, उनको परमात्माकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? इनको मिटाये बिना शान्ति नहीं मिल सकती।

वास्तवमें आप जीवन्मुक्त हैं। कामना आदि दोष ही बाधक हैं। वास्तवमें दोष आपमें हैं नहीं। आप परमात्माके अंश हो, इसमें सन्देह नहीं है। कोई दोष आपके साथ रहनेवाला नहीं है। सब छूटनेवाले हैं। जो प्राप्त करना है, वह नित्यप्राप्त है और जिसका त्याग करना है, वह स्वतः आपसे दूर हो रहा है। शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि कोई हमारा नहीं है। ये सब प्रकृतिके हैं। हमारा कोई नहीं है—ऐसा मान लो तो जीवन्मुक्त हो जाओगे। पर इनको अपना समझोगे तो बड़ा भारी बन्धन होगा। जीवन्मुक्ति चाहते हो तो जड़ चीजोंका त्याग करो। त्यागका मतलब है इनमें रस मत लो। अपनी चाहनाको सर्वथा मिटा दो, फिर सब ठीक हो जायगा। भगवान्‌से प्रार्थना करो—

मेरी चाही मत करो, मैं मूरख अग्यान।
तेरी चाही में प्रभो, है मेरा कल्यान॥

नामजप करना हो तो भगवान्‌को अपना मानकर नामजप करो। भगवान्‌को अपना मानना हमारेको बहुत बढ़िया लगता है। इन वर्षोंमें यह बात हमारेको विशेष जँची है। गीता 'साधक-संजीवनी' लिखते समय यह बात जैसी थी, उस समयसे भी इस समय यह बात विशेष है। भगवान्‌को अपना मान लो तो सब आफत मिट जायगी, आनन्द हो जायगा!

*** *** ***

जीवका बन्धन भगवान्‌की कृपासे ही छूट सकता है। इसके लिये भगवान्‌से बार-बार प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भगवान्‌को भूलें नहीं तो फिर बन्धन होगा ही नहीं। उनकी कृपासे सब काम ठीक हो जायगा। एक ही काम है कि भगवान्‌को भूलें नहीं। भगवान् कितने सस्ते हैं कि केवल याद करनेमात्रसे प्रसन्न हो जाते हैं—'**अच्युतः स्मृतिमात्रेण**'! सब वेदोंका, सब शास्त्रोंका, सब पुराणोंका, सब स्मृतियोंका, सम्पूर्ण सन्तवाणीका सार यह है कि भगवान्‌को याद रखे।

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा॥

(महाभारत, अनु० १२४; नरसिंहपुरण १७। ३३)

'सम्पूर्ण शास्त्रोंका मन्थन करने तथा बार-बार विचार करनेसे यही बात सिद्ध हुई है कि सदा भगवान्‌का ध्यान करना चाहिये।'

भगवान्‌को याद रखनेसे सब काम अपने-आप ठीक हो जाता है। एक भगवान्‌को याद रखनेमात्रसे आप बड़े भारी भक्त हो जाओगे!

*** *** ***

भगवान्‌को यादमात्र करनेसे भगवान्‌की शक्ति आ जायगी। विश्वासपूर्वक भगवान्‌का स्मरण करनेसे असम्भव भी सम्भव हो जाता है, कठिन भी सुगम हो जाता है। संसार बदल जाता है। इसलिये

भाइयों और बहनोंसे कहना है कि भगवान्‌का स्मरण करो। मनुष्य पाप, अन्याय, झूठ-कपट, बेईमानी, विश्वासघात करते हैं कि इससे काम ठीक हो जायगा, और कुछ-कुछ ठीक दीखता भी है, पर उनका परिणाम बड़ा भयंकर निकलता है! अगर भगवान्‌को अपना समझें और उनको याद करें तो सब काम ठीक हो जाते हैं।

सन्त-महात्मा अपने पासमें कुछ नहीं रखते, फिर भी मौजसे, आनन्दसे जीते हैं! वे भगवान्‌का स्मरण करते हैं। रुपयों, वस्तुओंके लिये लोग कितने ही पाप करते हैं, फिर भी दिवाला निकल जाता है और वे दुःख पाते हैं, कष्ट उठाते हैं। परन्तु भगवान्‌का स्मरण करनेवाले कोई संग्रह भी नहीं करते, फिर भी उनका सब काम ठीक चलता है। ऐसा प्रत्यक्ष देखनेपर भी लोगोंको यह बात समझमें नहीं आती! इसका कारण यह है कि झूठ-कपट, बेईमानीका जितना भरोसा है, जितना आश्रय है, उतना भगवान्‌का नहीं है। वे भगवान्‌को झूठ-कपट, बेईमानीके समान भी नहीं समझते! इसी कारण वे दुःख पाते हैं, कष्ट उठाते हैं, नरकोंमें जाते हैं! फिर भी यह बात समझते नहीं कि भगवान्‌को भूलनेसे ही यह आफत आती है। भगवान्‌की स्मृति सम्पूर्ण विपत्तियोंका नाश करनेवाली है—'**हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्**' (श्रीमद्भा० ८। १०। ५५)। परन्तु वे विश्वास नहीं करते कि याद करनेसे क्या होगा! आश्चर्यकी बात है कि आस्तिक-भाववाले तो भगवान्‌को भूल जाते हैं, पर झूठ-कपटपर विश्वास करनेवाले झूठ-कपटको नहीं भूलते! अन्तःकरण मैला होनेसे उनको मैली बात ही ठीक दीखती है।

भाइयोंसे और बहनोंसे आदरपूर्वक, प्रेमपूर्वक, स्नेहपूर्वक प्रार्थना है कि आप भगवान्‌को याद करो। अगर आस्तिकभाव हो, भगवान्‌का महत्त्व हो तो यह बात सुनते ही पकड़में आ जाती है और स्वतः-स्वाभाविक होने लगती है। अब भी सब काम भगवान्‌की कृपासे ही होता है, पर लोग मान लेते हैं कि झूठ-कपट, बेईमानी, विश्वासघात, धोखा देनेसे काम हुआ है। भगवान्‌को याद करनेसे कभी काम ठीक नहीं भी हो तो विचलित नहीं होना चाहिये। जिसका परिणाम ठीक नहीं होता, वह काम भगवान् नहीं करते। वह काम न होनेमें ही हमारा हित है।

तुलसी सीताराम कहु दृढ़ राखहु बिस्वास।
कबहूँ बिगरे ना सुने रामचंद्र के दास॥

बालक दूकानदारको पैसा देकर चाकू, दियासलाई आदि खरीद सकता है और अपना नुकसान कर सकता है, पर माता-पिता बालकसे पैसेके बदले चाकू आदि नहीं देते। भगवान् हमारे माता-पिता हैं। लौकिक माता-पितासे तो भूल हो सकती है, पर भगवान्‌से भूल नहीं होती। इसलिये कभी भगवान् हमारा काम नहीं करें तो उसमें हमारा कोई-न-कोई हित है। इसका पीछे पता लगता है, पहले पता नहीं लगता। कई बार ऐसी बातें समझमें आती हैं, फिर भी भगवान्‌पर विश्वास नहीं करते—यह बड़े आश्चर्यकी बात है!

*** *** ***

एक 'विवेक' होता है और एक 'अभ्यास' होता है। दोनों अलग-अलग हैं। सत्संग करनेवाले अभ्यासको ज्यादा आदर देते हैं, विवेकको आदर नहीं देते। विवेककी बात कहनेपर भी उनके भीतर आदर विवेकका न होकर अभ्यासका ही रहता है। विवेककी बात सुनेंगे, पर उसमें भी अभ्यास लगायेंगे! यह निश्चित बात है कि संसारके सम्बन्धके बिना अभ्यास नहीं होता, और विवेक संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद करता है। अगर आप विवेकका आदर करो तो रोजाना सुननेकी जरूरत नहीं है। विवेकसे प्रत्यक्ष दीखता है कि संसार हमारा नहीं है, संसारके हम नहीं हैं।

अभ्याससे शरीरका सम्बन्ध कभी नहीं छूटेगा। कारण कि अभ्यासमें शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धिकी सहायता लेनी पड़ती है। जिनकी सहायता लेनी पड़ती है, उनका त्याग कैसे होगा? इसलिये **तत्काल काम विवेकसे होता है, अभ्याससे नहीं।** विवेकसे तत्काल शरीरसे अलगाव दीखेगा कि शरीर अलग है, मैं अलग हूँ। परन्तु आपके भीतर यह बात जँची हुई है कि रोजाना अभ्यास करेंगे, तब शरीरसे सम्बन्ध छूटेगा। फिर आप कहते हैं कि 'शरीरका सम्बन्ध छूटता नहीं! स्वामीजी कहते हैं कि जल्दी होता है, पर हुआ तो नहीं!' **जल्दी होता है, पर विवेकसे होता है, अभ्याससे नहीं।** अगर विवेकको प्रधानता देते तो पट हो जाता!

मनुष्यमें विवेककी प्रधानता है। अभ्यास तो पशुओंमें भी होता है। नाटक (सर्कस)-में बन्दर, हाथी, सिंह आदि भी काम कर लेते हैं! मनुष्यको भगवान्‌ने जैसा विवेक दिया है, वैसा विवेक पशुओंमें तो है ही नहीं, देवताओंमें भी नहीं है! वे सब भोगयोनियाँ हैं। विवेकसे आध्यात्मिक उन्नति जल्दी होती है।

विवाह होता है तो पत्नीसे सम्बन्ध जोड़नेके लिये आप अभ्यास नहीं करते, केवल मान्यता करते हैं। मान्यतासे चट सम्बन्ध जुड़ जाता है। परन्तु भगवत्सम्बन्धी बातोंमें आप मान्यता अथवा विवेक नहीं लगाते, प्रत्युत अभ्यास लगाते हैं! समय अभ्यासमें लगता है, विवेकमें नहीं। विवेककी प्रधानतासे तत्काल काम होता है।

*** *** ***

अपने-अपने घरोंमें आप बड़ोंकी सेवा करो। छोटे-बड़े सबको सुख-आराम पहुँचाओ। बड़ोंके सामने मत बोलो। उनकी आज्ञाका पालन करो। बड़े कोई ऐसी बात कह दें, जो ठीक नहीं हो, उससे खराबी होनेवाली हो तो हाथ जोड़कर खड़े हो जाओ। वे पूछें तो उनसे कहो कि आपने जो बात कही है, वैसा करनेसे परिणाम अच्छा नहीं होगा। वे कहें कि नहीं-नहीं, ऐसा ही करो, तो वैसा ही कर दो। अगर उसका परिणाम अच्छा नहीं हो और वे बोलें कि तुमने तो पहले ही मना किया था, तो बोलो कि मैं कोई परमात्मा थोड़े ही हूँ; मेरेको क्या पता कि भविष्यमें क्या होगा?

श्रोता—'ॐ' नाम क्यों लेते हैं?

स्वामीजी—शास्त्रोंमें लिखा है कि वेदोंका कोई भी मन्त्र पढ़ो तो 'हरिः ॐ' कहकर उसका उच्चारण करो। जैसे गायोंमें साँड़ मुख्य है, ऐसे ही वैदिक ऋचाओंमें 'ॐ' मुख्य है। जैसे साँड़के रहनेसे ही गायें फलवती, दूधवाली होती हैं, ऐसे ही 'ॐ' के उच्चारणसे ही श्रुतियाँ फलवती होती हैं, श्रुतियोंमें शक्ति आती है।

श्रोता—मुझे भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए छः-सात साल हो गये। अब तीन-चार सालसे जब भगवान्‌के ध्यानमें बैठता हूँ तो एक प्रकाश आता है, जो धीरे-धीरे चारों तरफ फैल जाता है। उससे मैं घबरा जाता हूँ!

स्वामीजी—घबराना नहीं चाहिये। जब मन थोड़ा एक जगह लगता है, तब ऐसे चमत्कार होते हैं। यह कोई अन्तिम चीज नहीं है, प्रत्युत बीचका चमत्कार है। यह किसीका होता है, किसीका नहीं होता। परन्तु इससे घबराओ मत। इससे लाभ होगा, नुकसान नहीं होगा। आप भगवान्‌का भजन करते रहो, बढ़ाते रहो। कई सिद्धियाँ आयेंगी। परन्तु लोगोंमें अपनी सिद्धाई मत करना, नहीं तो भक्तिमें बाधा लग जायगी, भगवान्‌की प्राप्ति नहीं होगी!

श्रोता—हनुमान्‌जीको भगवान् मानें या देवता मानें?

स्वामीजी—उनको रामचन्द्रजीका दास मानो। वे सब काम करते हैं।

आपको एक बात बतायें! संसारमें रामजीके जितने मन्दिर हैं, उन सबमें हनुमान्‌जीका भी मन्दिर है। रामजीका स्वतन्त्र मन्दिर नहीं है; परन्तु हनुमान्‌जीके स्वतन्त्र मन्दिर भी हैं! रामजीसे ज्यादा मन्दिर हनुमान्‌जीके हैं!! आपको जगह-जगह हनुमान्‌जीके जितने मन्दिर मिलेंगे, उतने रामजीके मन्दिर नहीं मिलेंगे। जहाँ रामजीकी मूर्ति हो, वहाँ तो हनुमान्‌जी होंगे ही, पर जहाँ हनुमान्‌जी हों, वहाँ रामजीकी मूर्ति हो—यह नियम नहीं है। तात्पर्य है कि जो अपने मालिकके सच्चे दास होते हैं, उनकी मालिकसे भी विशेष प्रशंसा होती है—***'राम ते अधिक राम कर दासा'*** (मानस, उत्तर० १२०। ८)। भगवान्‌के भक्तोंका दर्शन और सेवा करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है।

श्रोता—शरीर विनाशी है—यह बात अच्छी तरहसे जानते हुए भी हमारी शरीरमें, संसारमें आसक्ति क्यों हो जाती है?

स्वामीजी—जानते नहीं हो, सीखते हो। सीखी हुई बात काम नहीं आती। जानी हुई बात काम आती है। बातें सीखनेसे पण्डिताई आ जायगी, व्याख्यान देना आ जायगा, पर शान्ति नहीं मिलेगी। हर समय भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! ऐसी कृपा करो कि मैं जान जाऊँ'। चलते-फिरते, उठते-बैठते आठ पहर कहते ही रहो तो भगवान्‌की कृपासे आपको उसका ज्ञान हो जायगा। फिर शरीरमें आसक्ति नहीं रहेगी। शरीरमें आसक्ति अनजानपनेसे होती है।

श्रोता—भगवान्‌ने सीताजीका त्याग क्यों किया?

स्वामीजी—प्रजाके हितके लिये। राजा वही हो सकता है, जो प्रजाके हितके लिये अपना अंग भी काट डाले। सीताजीका त्याग करनेसे रामजीको सुख नहीं हुआ। सीताजीका त्याग करनेके बाद रामजी चटाईपर सोते थे, बढ़िया भोजन नहीं करते थे! पति और पत्नी एक-दूसरेका अंग होते हैं। रामजीने भी कष्ट सहा और सीताजीने भी कष्ट सहा, पर प्रजाके हितके लिये। **जो प्रजाके हितके लिये अपनी प्यारी-से-प्यारी चीजका भी त्याग कर सकता है, वही राजा होता है। रुपयोंका, अपने सुख-आरामका लोभी आदमी राजा होनेलायक नहीं है।**

श्रोता—मुसलमान और ईसाई तो एकको मानते हैं, पर हिन्दुओंमें अनेक देवी-देवताओंकी पूजा होती है, ऐसा क्यों?

स्वामीजी—यही श्रेष्ठ चीज है! अनेक देवी-देवता होनेपर भी इष्ट एक ही होता है। जैसे ज्यादा पुर्जेवाली घड़ी बढ़िया होती है, थोड़े पुर्जोंवाली घड़ी बढ़िया नहीं होती, ऐसे ही अनेक उपासनाओंवाला धर्म सबसे श्रेष्ठ होता है; क्योंकि लोग अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उपासना करके अपना कल्याण कर सकते हैं। सबको एक लाठीसे हाँकना पशुओं काम है।

*** *** ***

भगवान्‌को अपना मानो। संसारको अपना मत मानो और सेवा करो। बस, इतनी ही बात है! अपना नहीं मानकर संसारकी सेवा करोगे तो कल्याण होगा, तत्त्वज्ञान होगा, परमात्माकी प्राप्ति होगी। जो अपना है, उसको अपना माननेसे और जो अपना नहीं है, उसको अपना न माननेसे सब काम ठीक हो जायगा, लोक-परलोक सब सुधर जायगा। सच्ची बातको माननेसे सब लोग आदर करेंगे। आप सबसे श्रेष्ठ हो जाओगे।

मेरा कुछ है और मेरेको कुछ चाहिये—इन दो बातोंसे बन्धन है। आप दो बातोंको ठीक तरहसे

पकड़ लो कि मेरा कुछ नहीं है और मेरेको कुछ नहीं चाहिये तो निहाल हो जाओगे! 'मेरा कुछ नहीं है'—इस बातको स्वीकार करनेसे 'मेरेको कुछ भी नहीं चाहिये'—इस बातको माननेकी आपमें ताकत आ जायगी, और ताकत आते ही आप संसारसे ऊँचे उठ जाओगे। ऊँचे उठनेसे जीव परमात्मामें और शरीर संसारमें मिल जायगा। शरीर संसारमें मिलनेपर सब संसार राजी हो जायगा और जीव परमात्मामें मिलनेपर भगवान् मिल जायँगे। प्रेमपूर्वक मिलकर भगवान् हमें अपना लेंगे। अपनानेके बाद आप ऐसे हो जायँगे कि 'मैं कुछ हूँ ही नहीं'। ऐसा होनेके बाद भगवान् कहेंगे कि मेरा कुछ है ही नहीं, तेरा ही है; तू ही है, तू ही है! भगवान्‌के दरबारमें भक्तके सिवाय कोई भगवान्‌को प्यारा नहीं है। भगवान् कहते हैं कि जो मेरे भक्तोंके विरुद्ध आचरण करेगा, वह मेरी भुजा ही क्यों न हो, मैं उसे काट डालूँगा—**'छिन्द्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम्'** (श्रीमद्भा० ३। १६। ६)। अपने भक्तोंको भगवान् सब कुछ दे देते हैं। सब कुछ देनेपर भी भगवान् अपनेको ऋणी मानते हैं कि तुमने मेरा जितना काम किया है, इतना किसीने नहीं किया! तुमने जितना दिया है, इतना किसीने नहीं दिया! तुमने अपने-आपको ही मेरेको दे दिया! अब मैं तेरेको क्या दूँ! परन्तु आप कहेंगे कि मेरा कुछ था ही नहीं, है ही नहीं, होगा ही नहीं; सब कुछ आपका ही है। भगवान् खुश हो जायँगे, और सब दुनिया राजी हो जायगी! सब दुनिया आपके दर्शन करेगी, आपका चिन्तन करेगी! आपके दर्शनसे दुनियाका भला होगा, कल्याण होगा, शान्ति होगी, आनन्द होगा, दुःख चला जायगा, सन्ताप मिट जायगा, जलन मिट जायगी! आपका, दुनियाका, सबका लाभ-ही-लाभ होगा! जो आपके पासमें आयेगा, वह भी दुःखी नहीं रहेगा, आनन्दित हो जायगा!

*** *** ***

भगवान्‌में प्रेम होनेके समान कोई भजन नहीं है।

पन्नगारि सुनु प्रेम सम भजन न दूसर आन।
अस बिचारि मुनि पुनि पुनि करत राम गुन गान॥

(मानस, अरण्य० १०में पाठभेद)

भगवान् मीठे लगें, भगवान्‌का नाम अच्छा लगे, भगवान्‌की लीला अच्छी लगे, भगवान्‌का तत्त्व प्रिय लगे, भगवान्‌का रहस्य अच्छा लगे। गंगाजी दीखे तो प्रसन्न हो जाय कि यह भगवान्‌के चरणोंका जल है! भगवान्‌से सम्बन्धित कोई बात दीखे तो आनन्दित हो जाय। यह प्रेम है! नामजप आदि सब श्रेष्ठ हैं, पर भगवान्‌में प्रियताके समान कोई भजन नहीं है। इसलिये मुनिजन बार-बार रामजीके गुणोंका गान करते हैं; क्योंकि गुणोंका गान करनेसे प्रेम बढ़ता है। प्रेमपूर्वक भगवान्‌का चरित्र पढ़ा जाय, प्रेमपूर्वक रामायणका पाठ किया जाय तो इससे प्रेम बढ़ता है, भगवान् अपने लगते हैं।

अनेक बड़े-बड़े सन्त हुए हैं, जिन्होंने भगवान्‌के दर्शनकी अपेक्षा प्रेमको श्रेष्ठ माना है। कारण कि दर्शन तो कभी हों, कभी नहीं हों, पर प्रेम हरदम रहता है। दर्शन होनेसे प्रेम हो जाय—यह नियम नहीं है, पर प्रेम होनेसे भगवान्‌को दर्शन देने ही पड़ते हैं। परन्तु भक्त प्रेमके सिवाय कुछ नहीं चाहता और भगवान्‌से माँगता भी यही है—***'सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ'*** (मानस, अयोध्या० १२९)।

संसारके भोगोंमें रचे-पचे रहनेसे प्रेम प्रकट नहीं होता। असली प्रेम संसारसे मुक्त होनेके बाद होता है। प्रेममें जो आनन्द है, वह मुक्तिमें नहीं है। प्रेमसे भगवान् भी वशमें हो जाते हैं। जैसे भक्तोंका चित्त भगवान्‌के चरणोंमें रहता है, ऐसे ही भगवान्‌का चित्त भक्तोंके चरणोंमें रहता है—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** (गीता ४। ११)।

*** *** ***

दूसरेका कर्तव्य देखना और फल अपना चाहना—ये दो बातें बहुत खराब हैं। दूसरेका कर्तव्य देखते ही अकर्तव्य हो जाता है; क्योंकि दूसरेका कर्तव्य देखना हमारा काम है ही नहीं। कौन क्या करता है, कैसे करता है—यह बिल्कुल मत देखो। अपना काम ठीक तरहसे करो। अपनी ड्यूटी ठीक तरहसे बजाओ। दूसरा अच्छा करता है कि मन्दा करता है, इस तरफ ध्यान ही मत दो। इस विषयमें यह दोहा बड़ा अच्छा है—

तेरे भावै कछु करौ, भलौ बुरौ संसार।
'नारायन' तू बैठि के, अपनौ भुवन बुहार॥

जो दूसरेका कल्याण चाहता है, वही वास्तवमें अपना कल्याण करता है। अपना और दुनियाका, दोनोंके कल्याणका उद्देश्य होना चाहिये। इस उद्देश्यको लेकर ही आप और हम यहाँ इकट्ठे हुए हैं। अपनी कामना और अभिमान—इन दोनोंसे काम बिगड़ता है।

कामना सत्यानाशी है! कामनामें फँसनेपर आदमीको होश नहीं रहता। कामनाके त्यागसे लाभ होता है—यह बात उसकी समझमें नहीं आती। केवल कामना और अभिमानके कारण संसारमात्रका काम बिगड़ रहा है।

आजकल अच्छे लेख लिखनेवाले आदमी बहुत कम हो गये हैं। सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका चाहते थे कि जो साधन करते हैं, आध्यात्मिक उन्नतिमें लगे हुए हैं, उनके लेख आने चाहिये। परन्तु आजकल आध्यात्मिक पत्रिकाओंमें विद्वत्ताकी तरफ तो ध्यान है, पर साधनकी तरफ ध्यान नहीं है। **पारमार्थिक उन्नति साधकोंके लेखों द्वारा होती है, विद्वानोंके लेखों द्वारा नहीं होती।** विद्वानोंमें विद्याका एक अभिमान होता है। वे सुन्दर लिखते हैं, सुन्दर बात कहते हैं, पर साधन नहीं होनेसे वे बातें ठोस नहीं होतीं।

कल्याणके लिये सबसे पहले जड़ और चेतनका विवेक बहुत आवश्यक है। इसलिये गीताका आरम्भ शरीर और शरीरीके विवेकसे हुआ है। जैसे हम मकानमें रहते हैं तो मकान और हम एक चीज नहीं हैं, ऐसे ही हम शरीरमें रहते हैं तो शरीर और हम एक चीज नहीं हैं, अलग-अलग हैं। परन्तु इस तरफ साधकोंका ख्याल बहुत कम है! वे अपनेको शरीरके साथ एक मानते हुए ही सब काम करते हैं। शरीर मैं नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं है और शरीर मेरे लिये नहीं है—इसको ठीक समझनेवाले आदमी बहुत कम हैं। हमारे मनमें जड़ वस्तुका आदर होगा तो आध्यात्मिक उन्नति कैसे होगी? जड़ताके द्वारा चेतनताकी प्राप्ति नहीं होती, प्रत्युत जड़ताके त्यागसे चेतनताकी प्राप्ति होती है—यह बात पुस्तकोंमें इतनी स्पष्ट रूपसे नहीं आती। पुस्तकोंमें जड़ताके द्वारा चेतनताकी प्राप्तिकी बात ही अधिक आती है। वास्तवमें पारमार्थिक उन्नतिके लिये जड़ताकी आवश्यकता नहीं है, प्रत्युत जड़ताके त्यागकी आवश्यकता है। यह बहुत गहरी बात है! **जड़ता केवल दूसरोंके हितके लिये है।**

*** *** ***

सम्पूर्ण जीवोंका पालन करना बढ़िया है, पर गायोंका पालन करना विशेष है। गाय संसारमात्रकी माँ है—'**गावो विश्वस्य मातरः**'। माँ तो बचपनमें दूध पिलाती है, पर गाय जीवनभर (बचपन, जवानी और वृद्धावस्थामें भी) दूध पिलाती है। जिसको कुछ भी नहीं पचता, उसको भी गायका दूध देते हैं। गायका दूध सबके लिये सुपाच्य, गुणकारी, हितकारी होता है। गायके दूधमें जितनी शक्ति है, उतनी शक्ति दूसरे दूधमें नहीं है। विदेशी गायोंमें क्रोध बहुत होता है, इसलिये उनका दूध बढ़िया नहीं होता। भैंसका दूध गाढ़ा होता है, पर उसमें सात्त्विकता नहीं होती। सड़कपर चलती गायें मोटरका

हॉर्न सुनते ही एक तरफ हो जाती हैं, पर भैंसें बीचमें खड़ी देखती रहती हैं। तात्पर्य है कि भैंसोंमें वह अक्ल नहीं है, जो गायोंमें है। गायें तालाबके किनारे खड़े होकर बड़े प्रेमसे पानी पीती हैं, पर भैंस पानीमें घुस जाती है और पेशाब करके पानीको गन्दा भी कर देती है।

गायका दूध बुद्धिवर्धक होता है। पहले ऋषि-मुनि, सन्त-महात्मा गायका दूध पीते थे, जिससे उनकी बुद्धि तीक्ष्ण होती थी। उनके द्वारा लिखे संस्कृतके ग्रन्थोंमें जितनी विशेष बातें मिलती हैं, उतनी अन्य भाषाओंके ग्रन्थोंमें नहीं मिलतीं।

गायोंकी सेवा करनेसे आयु बढ़ती है और असाध्य रोग मिट जाते हैं, ऐसा देखने और सुननेमें आया है। गायोंके गोमूत्रसे ऐसी ओषधियाँ बनती हैं, जिनसे असाध्य रोग दूर हो जाते हैं।

इस युगमें यन्त्रोंकी अधिकता होनेसे गायोंका बहुत नाश हुआ है। अतः अभी गायोंका पालन करनेका विशेष पुण्य है।

*** *** ***

मनुष्यको अपना लक्ष्य बनाना चाहिये कि इस उम्रमें हमें क्या करना है? हमें परमात्माको प्राप्त करना है, अपना कल्याण करना है, अपनी मुक्ति करना है—ऐसा लक्ष्य बनाना चाहिये। अगर हमारा लक्ष्य हो जाय कि हमें परमात्माकी प्राप्ति करनी है तो परमात्मप्राप्ति करना बहुत सुगम हो जायगा। लक्ष्य बनाये बिना आप करोगे क्या? घरसे बाहर निकल गये तो कहाँ जाना है—इसका पता तो होना चाहिये। अगर कहाँ जाना है—इसका पता नहीं तो फिर कहीं भी चले जाओ, मार्ग बतानेकी क्या जरूरत है? आपका लक्ष्य ही नहीं बनेगा तो किसीसे क्या उपाय पूछोगे और दूसरा क्या उपाय बतायेगा? इसलिये सब भाई-बहनोंको लक्ष्य बनाना चाहिये कि हमें इस उम्रमें यह काम करना है। चाहे वह काम पूरा हो या न हो, पर लक्ष्य तो होना चाहिये।

हमारे एक गुरुभाई थे। उन्होंने पूछा कि स्वामीजी कलकत्ते गये तो वहाँसे कितना धन लाये हैं? क्योंकि आदमी पैसा कमानेके लिये कलकत्ते जाता है। परन्तु हमारे मनमें स्वप्नमें भी नहीं आयी कि कलकत्ते आये हैं तो कुछ धन तो ले चलो; क्योंकि धन हमारा लक्ष्य है ही नहीं। हम कलकत्तेमें कई वर्ष रहे, पर एक कौड़ी नहीं लाये!

पढ़ाई करते समय भी मेरा लक्ष्य था कि आध्यात्मिक उन्नति कैसे हो? एक विद्यार्थी वेदान्तकी परीक्षामें फेल हो गया तो वह बड़ा दुःखी हो गया। यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह कैसा वेदान्त है कि फेल होनेपर दुःखी हो जाय!

सत्संगमें आनेवाले भाई-बहनोंको तो जरूर विचार करना चाहिये कि हमें अपना कल्याण करना है। अगर सत्संग करते तीन वर्ष बीत गये तो विचार करें कि इन तीन वर्षोंमें हमारी कितनी उन्नति हुई? परमात्माके नजदीक कितने पहुँचे? अगर तीन वर्षोंमें इतना काम हुआ तो पूरा काम कितने वर्षोंमें होगा?

जो धन कमानेका उद्देश्य रखते हैं, वे कभी सफल होते हैं, कभी विफल होते हैं; क्योंकि धनका मिलना अथवा न मिलना प्रारब्धके अधीन है। परन्तु आध्यात्मिक मार्गमें मनुष्य कभी विफल नहीं होता। वह धीमी चालसे चलता है तो देरी लगती है, पर विफल नहीं होता। उसमें लाभ होता ही है। कारण कि मनुष्यजन्म परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही मिला है।

परमात्मप्राप्तिका लक्ष्य रखकर चलनेपर भी वर्षोंतक जो बात नहीं मिली, वह बात आपको कहता हूँ! **मनुष्यशरीर परमात्माकी प्राप्तिके लिये मिला है; परन्तु मनुष्यशरीरसे परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती!**

मनुष्यशरीरसे संसारकी सेवा होगी, और संसारकी सेवाका फल होगा परमात्माकी प्राप्ति! आपके पास जितनी सामग्री है, वह सब-की-सब केवल निष्कामभावसे दूसरोंकी सेवा करनेके लिये है।

शरीरसे सेवा होती है और सेवामें निष्कामभाव होनेसे कल्याण होता है। कामना रखकर आप कोई काम करोगे तो वह काम अपने लिये होगा। निष्कामभावसे, भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये, दूसरोंका भला करनेके लिये काम करो और बदलेमें कुछ मत चाहो।

विद्या पढ़ लेना और चीज है, आध्यात्मिक उन्नति करना और चीज है। आज साधकोंकी बड़ी दुर्दशा है! वे परमात्माकी प्राप्ति चाहते हैं, पर यह पता नहीं कि परमात्माकी प्राप्ति कैसे होती है! गृहस्थ कल्याणके लिये साधुके पास जाता है, पर मैं साधु होकर गहस्थ (सेठजी श्रीजयदयाल गोयन्दका)-के पास गया! कारण कि साधुओंमें मैंने ऐसा कोई नहीं देखा जो तत्त्व बता सके। मैं सेठजीको जानता नहीं था कि वे कौन हैं, गीताप्रेससे उनका क्या सम्बन्ध है, पर 'कल्याण' में उनके लेख देखे तो मनमें आया कि ऐसे लेख परमात्मतत्त्वको जाननेवाला ही लिख सकता है। विद्याके जोरपर कोई ऐसे लेख नहीं लिख सकता। मेरा साधु अथवा गृहस्थसे क्या मतलब? मेरा मतलब परमात्मप्राप्तिसे है। साधुओंमें हमारी निन्दा हुई कि अच्छे पढ़े-लिखे, समझदार होकर भी तुमने बेसमझीका काम किया! एक बनियेके पीछे फिरते हो! परन्तु कोई निन्दा करे या प्रशंसा, हमें तो वह काम करना है, जिससे परमात्मप्राप्ति हो। बनियेके पीछे तो वह फिरता है, जिसे पैसा चाहिये। मैं पैसोंको लेकर उनको सेठ नहीं कहता था। उनको 'सेठ' कहनेका तात्पर्य 'श्रेष्ठ' कहनेमें था। श्रेष्ठ वह है, जो परमात्माकी प्राप्ति कर ले। सेठजीने रुपया कमानेके लिये गीताप्रेस नहीं खोला, प्रत्युत सबका कल्याण हो जाय—इस उद्देश्यसे गीताप्रेस खोला।

परमात्माकी प्राप्ति कैसे हो—ऐसी सच्ची लगन लग जाय तो गुरु मिले, चाहे न मिले, लाभ जरूर होगा, इसमें हमें सन्देह नहीं है।

*** *** ***

श्रोता—बालकको भगवान्‌की प्राप्तिके लिये कौन-सा साधन करना चाहिये।

स्वामीजी—बालकके लिये तो बड़ी सुगम बात है—रोना। रोनेसे भगवान् मिल जायँ! बालकोंके लिये रोना बड़ा भारी बल है—'**बालानां रोदनं बलम्**'।

श्रोता—भगवान्‌का नाम जिह्वासे लिया जाता है और जिह्वा शरीरका ही एक अंग है। इससे परमात्माकी प्राप्ति कैसे होगी?

स्वामीजी—यह देखें कि आपके मनमें क्या है? एक आदमी ठग है, वह भी नाम लेता है। कालनेमि हनुमान्‌जीके सामने नाम लेता है तो क्या वह भक्त है? भीतरके भावसे परमात्माकी प्राप्ति होती है। क्या टेपरिकार्डर लगानेसे परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी? नामजपमें ऊपरसे तो क्रिया है, पर भीतरमें भाव है। साधक जप करता है तो भावसे करता है। वह भाव कल्याण करता है।

श्रोता—कौन-सा भजन बढ़िया होता है?

स्वामीजी—भजन वही बढ़िया होता है, जिसमें भगवान्‌का प्रेम बढ़े और संसारसे वैराग्य हो।

*** *** ***

सबसे बढ़िया साधन शरणागति है। **शरणागतिका तात्पर्य है—अपना मैं-पन मिटा दे, परमात्मामें लीन कर दे। न मेरा कुछ है, न मेरेको कुछ चाहिये और न मैं कुछ हूँ।** इसके लिये भगवान्‌का होकर ही सब काम करे। मात्र संसारमें एक परमात्माके सिवाय अपना कुछ नहीं है। अगर मुक्ति

चाहते हो, कल्याण चाहते हो, प्रेम चाहते हो, अपना वास्तविक हित चाहते हो तो सब प्रकारसे उस परमात्माके हो जाओ। इसके समान कोई बात मिलेगी नहीं!

भगवान् सबको हृदयसे लगानेके लिये हरदम तैयार हैं। भगवान्‌से एक ही प्रार्थना करो कि 'हे मेरे नाथ! हे मेरे स्वामी! हे मेरे मालिक! मैं आपको भूलूँ नहीं, बस, और कुछ नहीं चाहिये'। वास्तवमें स्वतः-स्वाभाविक वही होगा, जो भगवान् करेंगे, फिर हम क्यों पंचायती करें?

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥

(मानस, बाल० १२८। १)

आप स्वयं भगवान्‌के ही अंश हैं। अतः अपने-आपको भगवान्‌में ही लीन कर दें। मैं है ही नहीं, केवल तू-ही-तू है। 'मैं' केवल मान्यता है, वास्तवमें है नहीं। उस एक परमात्मामें ही सब कुछ स्वाहा कर दे। चिन्ता करनेवाला ही न रहे तो फिर कौन चिन्ता करे? यह शरणागति गीताका अन्तिम उपदेश है—'**मामेकं शरणं व्रज**' (गीता १८। ६६)।

चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते सब समय यह दृष्टि रहे कि एक परमात्मा ही हैं—'**वासुदेवः सर्वम्**' (गीता ७। १९)। परमात्माके सिवाय कुछ है ही नहीं, हुआ ही नहीं, होगा ही नहीं, हो सकता ही नहीं। '***भीतर भीतर, बाहर भीतर***' अर्थात् '***भीतर भी तर, बाहर भी तर, तरान्तर'!*** जिधर देखो, उधर आनन्द-ही-आनन्द है! सब कुछ भगवान् हैं और कुछ भी नहीं है—दोनोंका एक ही अर्थ होता है।

*** *** ***

श्रोता—नास्तिक लोगोंको भगवान्‌में कैसे लगायें?

स्वामीजी—उनकी सेवा करो। उनका विरोध मत करो। वे जानते कम हैं, इसलिये नास्तिक हुए हैं। परमात्मप्राप्तिकी आवश्यकता सबको है। सन्तोंका दूसरोंका हित करनेका स्वभाव होता है।

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥

(मानस, सुन्दर० ४१। ४)

नास्तिक आदमी उनको कितना ही दुःख दे दे, पर उसका नाश करनेकी बात सन्तोंने कभी कहीं नहीं कही। इसलिये नास्तिकका भला करो। भूले हुए आदमीको धक्का देकर गिरा देना दुष्टका काम है, सज्जनका काम नहीं है।

श्रोता—महाराजजी, सत्संगकी सब बातें समझमें आती हैं, लगन भी है, फिर भी काम क्यों नहीं बनता है?

स्वामीजी—मनमें रुपयोंकी और भोगोंकी इच्छा है। उनसे जो सुख मिलता है, उसका त्याग नहीं करते। इसलिये पारमार्थिक बातें काम नहीं देतीं।

श्रोता—सांसारिक कष्टों, उलझनों और तनावोंके मध्य ईश्वरका भजन और उनकी प्राप्ति करनेका सहज मार्ग क्या है?

स्वामीजी—आपकी लगन होनी चाहिये। लगन होनेपर काम होगा और लगन नहीं होनेपर काम नहीं होगा। आपकी लगन हो तो भगवान् और सन्त-महात्मा सब-के-सब आपकी मदद करनेके लिये तैयार हैं!

श्रोता—संसारके कार्य और भगवान्‌की भक्ति—ये दोनों साथ-साथ कैसे करें?

स्वामीजी—सब काम भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये करो तो संसारका काम भी भजन हो जायगा। भगवान् कहते हैं—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(गीता ९। २७)

'हे कुन्तीपुत्र! तू जो कुछ करता है, जो कुछ भोजन करता है, जो कुछ यज्ञ करता है, जो कुछ दान देता है और जो कुछ तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर दे।'

श्रोता—मुक्तिका उपाय क्या है?

स्वामीजी—उपाय है—भगवान्‌से 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' प्रार्थना करो और रोओ। यह उपाय सबने काममें लिया हुआ है। बालकपनमें कोई इच्छा होती तो रो देते थे। रोनेसे सब काम सिद्ध होते थे। अब भी भगवान्‌के आगे रोओ तो सब काम सिद्ध होंगे। यह सबकी काममें ली हुई अनुभूत औषधि है! एकान्तमें, लोगोंके देखनेमें न आये, ऐसी जगह रोओ तो जरूर फायदा होगा। भगवान् माँसे भी ज्यादा दयालु हैं।

श्रोता—क्या कलियुगमें भगवान्‌के दर्शन हो सकते हैं?

स्वामीजी—कलियुगमें और युगोंकी अपेक्षा सुगमतासे दर्शन होते हैं। कारण कि पापोंका बाहुल्य है, इसलिये थोड़ा अच्छा काम भी ज्यादा हो जाता है। जिस परीक्षामें थोड़े विद्यार्थी बैठते हैं, वहाँ सब पास हो जाते हैं, पर जहाँ ज्यादा विद्यार्थी होते हैं, वहाँ सबका पास होना कठिन होता है।

श्रोता—क्या इसके लिये नामजप करना पर्याप्त है?

स्वामीजी—केवल नामजप नहीं, हृदयकी लगन होनी चाहिये।

श्रोता—आजके समयमें मनुष्यका अन्त:करण विकारोंसे भरा है। उसे कैसे शुद्ध किया जाय, जिससे परमात्मा हमारे हृदयमें विराज जायँ?

स्वामीजी—भगवान्‌के शरण होकर 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। विकारोंको भगवान् दूर करेंगे। गीतामें भगवान्‌ने कहा है कि 'सम्पूर्ण धर्मोंका आश्रय छोड़कर तू केवल मेरी शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, चिन्ता मत कर।' (गीता १८। ६६)।

श्रोता—महाराजजी, आज बच्चोंके मनमें भक्तिका भाव कैसे जाग्रत् करें?

स्वामीजी—शिक्षा अच्छी होनी चाहिये। आज बच्चोंको बुरी शिक्षा मिल रही है, जिससे अनर्थ हो रहा है! आपलोग धनी होते हुए भी अपने बच्चोंको ईसाईयोंके स्कूलोंमें पढ़ाते हो। आप ऐसी पाठशालाएँ खोलो, जिससे दूसरे लोग भी आपकी पाठशालाओंमें आयें। आप चाहो तो अपना धन बर्बाद न करके ऐसी पाठशालाएँ खोल सकते हो, जिनसे गीता और रामायणका प्रचार हो, आध्यात्मिक उन्नति हो।

आजकी शिक्षा कामकी नहीं है। मैंने अच्छे-अच्छे विद्वानोंसे पूछा है कि पढ़ाईका उद्देश्य क्या है? किसलिये पढ़ना चाहिये? वे इसका उत्तर नहीं दे सके!

श्रोता—नौकरी पानेके लिये।

स्वामीजी—भीतरमें गुलामी-ही-गुलामी भरी है! क्या पढ़ाईका फल गुलामी करना है? क्या यह मनुष्यता है? यह महान् नीचपना है!

श्रोता—स्वेच्छाचारिताका दुर्गुण कैसे दूर किया जाय?

स्वामीजी—'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो और अपना व्यक्तिगत सुधार करो। दुनियाकी चिन्ता मत करो। आप अपना सुधार करो तो दूसरोंका भी सुधार होगा, पर दूसरोंका सुधार करोगे तो अपना सुधार नहीं होगा।

श्रोता—भगवान्‌का स्वरूप क्या है?

स्वामीजी—भगवान्‌का स्वरूप है—'है'। संसार 'नहीं' है और वह 'है'।

श्रोता—श्रीरामचरितमानसमें भगवान्‌को *'नेति नेति'* कहा है, इसका अर्थ क्या है?

स्वामीजी—इसका अर्थ है कि भगवान्‌का कोई पार नहीं पा सकता। भगवान्‌के इतने गुण हैं, इतना प्रभाव है, इतना तत्त्व है, इतना रहस्य है, इतनी महिमा है, जिसका कोई पार नहीं पा सकता—**'न इति, न इति'**।

श्रोता—*'तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं॥'* (मानस, सुन्दर० ७। २)। ऐसी स्थितिमें प्रभुको कैसे प्राप्त करें?

स्वामीजी—ये विभीषणके वचन हैं। इनका तात्पर्य है कि विभीषणमें साधनका, भगवान्‌में प्रीतिका अभिमान है ही नहीं। यह निरभिमानीकी आवाज है।

श्रोता—अल्प समयमें तथा शारीरिक थकावटमें पूजा कैसे करें?

स्वामीजी—मनसे पूजा करो। मन थकता नहीं है। मन संसारमात्रका चिन्तन करता रहता है, फिर भी थकता नहीं है। थकावट शरीरमें आती है।

श्रोता—क्या भगवान्‌का भजन करनेके लिये नौकरी-धन्धा छोड़ देना चाहिये?

स्वामीजी—मैं छोड़नेके लिये कभी नहीं कहता हूँ। काम करते हुए भजन करो। नौकरी-धन्धा करनेके सिवाय आपका समय बर्बाद बहुत होता है, उसको मत होने दो। आपके पास समय बहुत है। आपके पास चौबीस घण्टे हैं! नौकरी कितने घण्टे करते हो? आपकी नीयत हो तो भजन हो जायगा, हो जायगा, हो ही जायगा!!

श्रोता—मेरी इच्छा है कि अन्त समयमें मेरे प्राण निकलते समय माता (भगवती)-का ध्यान रहे। क्या यह हो सकता है?

स्वामीजी—हो सकता है। पर आप जीते-जी करोगे, तब होगा, नहीं तो अन्त समयमें पीड़ा होती है तो याद नहीं रहता। इसलिये अभीसे शुरू कर दो, जरूर फायदा होगा। अभीसे नामजप करो, चिन्तन करो और भगवान्‌से कहो कि 'हे नाथ! अन्तकालमें मैं आपको भूलूँ नहीं'। रोजाना रात्रिमें ग्यारह बजेसे एक बजेतक ज्यादा भजन-स्मरण करो तो अन्त समयमें याद आ जायगी।

श्रोता—चंचल मनको माताके चरणोंमें कैसे स्थिर करूँ?

स्वामीजी—मनका दोष नहीं है, प्रत्युत आपका खुदका दोष है, पर मनके माथे मढ़ते हैं! जैसे रेलगाड़ी सब जगह नहीं जाती, प्रत्युत वहीं जाती है, जहाँ लाइन बिछी है, ऐसे ही आपने जहाँ सम्बन्ध जोड़ा है, वहीं मन जाता है। हरेक जगह मन नहीं जाता।

श्रोता—यह जो मनमें दोष आता है तो क्या भगवान् हमारी परीक्षा लेते हैं?

स्वामीजी—नहीं। परीक्षा वह लेता है, जो अनजान होता है। भगवान् सब जानते हैं। उनको

परीक्षा लेनेकी जरूरत नहीं है।

श्रोता—शरणागत हो जानेके बाद साधन करनेकी आवश्यकता है क्या?

स्वामीजी—आप साधन किये बिना रह सकोगे नहीं! जिसको रुपयोंका लोभ लग जाय, वह रुपये कमाये बिना रह सकेगा नहीं। भगवान् क्या रुपयोंसे भी कमजोर हैं? आप शरणागतिका तत्त्व समझे नहीं! तत्त्व समझो तो भजनके बिना रहा नहीं जायगा।

श्रोता—रामायणमें आया है—***'पर हित सरिस धर्म नहिं भाई'*** (मानस, उत्तर० ४१। १)। सच्चा परहित क्या है?

स्वामीजी—सच्चा परहित है—सबको भगवान्‌में लगा देना।

श्रोता—गृहस्थमें रहकर साधककी दिनचर्या क्या होनी चाहिये?

स्वामीजी—मनसे हरदम भगवान्‌को याद रखना—'**अच्युतः स्मृतिमात्रेण**'। पूरा काम हो जायगा! भगवान्‌से एक-एक, दो-दो, तीन-तीन मिनटमें कहते रहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'।

*** *** ***

पारमार्थिक बातें बहुत सरल हैं, सीधी हैं, सुगम हैं; परन्तु जबतक राग-द्वेषका जोर रहेगा, तबतक आप बातें सुनकर सीख लोगे, अनुभव नहीं होगा। इसलिये जल्दी-से-जल्दी राग-द्वेषको मिटाओ, यह खास बात है। गीतामें भगवान् कहते हैं—

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥

(गीता ३। ३४)

'इन्द्रिय-इन्द्रियके अर्थमें अर्थात् प्रत्येक इन्द्रियके प्रत्येक विषयमें मनुष्यके राग और द्वेष व्यवस्थासे (अनुकूलता और प्रतिकूलताको लेकर) स्थित हैं। मनुष्यको उन दोनोंके वशमें नहीं होना चाहिये; क्योंकि वे दोनों ही इसके (पारमार्थिक मार्गमें) विघ्न डालनेवाले शत्रु हैं।'

जिसको आप अनुकूल मान लेते हो, उसमें राग हो जाता है और जिसको आप प्रतिकूल मान लेते हो, उसमें द्वेष हो जाता है। ये राग-द्वेष सच्ची, पारमार्थिक बातको टिकने नहीं देते। ये राग-द्वेष दूर कर दो सब काम ठीक हो जायगा। इनको मिटाना किसीके लिये सुगम और किसीके लिये कठिन पड़ सकता है, पर इनको मिटानेमें सब स्वतन्त्र हैं।

वास्तविक सत्ता एक ही है, पर राग-द्वेष उसमें दो पैदा कर देते हैं। एक बहुत ही सुगम और सबसे बढ़िया बात है—'**वासुदेवः सर्वम्**' (गीता ७। १९)। एक परमात्माके सिवाय कुछ भी नहीं है। परन्तु राग-द्वेष होनेके कारण यह बात समझमें, अनुभवमें नहीं आती।

श्रोता—भीतरमें जो संस्कार पड़े हुए हैं, उनसे राग-द्वेष प्रकट हो जाते हैं!

स्वामीजी—जो प्रकट होता और नष्ट होता है, वह सच्चा होता है क्या? जो सच्चा होता है, वह आता-जाता नहीं, हरदम ज्यों-का-त्यों रहता है। जो आता और जाता है, वह झूठा होता है। जो सच्चा नहीं है, झूठा है, उसको सत्ता आपने दे रखी है। यह केवल आपका दोष है!

आप इस बातको स्वीकार कर लो कि जो मिलती और बिछुड़ती है, वह हमारी चीज नहीं होती। हमारी चीज वह होती है, जो सदा रहती है। राग-द्वेषकी वृत्ति पैदा हो जाय तो उसकी परवाह मत करो। उसकी सत्ता मत मानो। उसको महत्त्व मत दो। उसको महत्त्व देनेसे ही वे टिके हुए

हैं। भगवान्‌ने कहा है—'**मया हतांस्त्वं जहि**' (गीता ११। ३४) 'मेरे द्वारा मारे हुओंको तुम मारो'।

हम हरदम रहते हैं और राग-द्वेष आते और जाते हैं, फिर वे हमारे साथी कैसे हुए? जो आया है, वह जायगा। आप विचार करें कि राग-द्वेष कहाँ आते-जाते हैं? ये अन्तःकरणमें आते-जाते हैं। आप अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) नहीं हो। आप अहंकारहित हो—'**निर्ममो निरहङ्कारः**' (गीता २। ७१; १२। १३)। नींदमें भी अहंकार नहीं रहता, पर आप रहते हो! अतः जिसमें अहंकार नहीं रहता—वह मैं हूँ। यह मार्मिक बात है! यह आपका अनुभव है! इसे स्वीकार कर लो तो आपका सब काम हो गया! जैसे बादल आते हैं, घटा छा जाती है, अँधेरा हो जाता है, पर आकाश ज्यों-का-त्यों रहता है, ऐसे ही आप ज्यों-के-त्यों रहते हो! आपमें राग-द्वोष कहाँ है?

श्रोता—महाराजजी, विचारके समय तो जो आप कहते हैं, वही दीखता है, पर जब वृत्ति पैदा होती है, तब ये मेरेमें दीखते हैं!

स्वामीजी—आप विचारका आदर करो, उसको महत्त्व दो। राग-द्वेष आगन्तुक हैं, सच्चे नहीं हैं। वे मेरेमें नहीं हैं।

श्रोता—बात तो सच्ची है!

स्वामीजी—इसमें 'तो' मत लगाओ। बात सच्ची है। 'तो' को छोड़ दो।

श्रोता—वृत्ति क्यों पैदा होती है?

स्वामीजी—कुत्तेमें वृत्ति क्यों पैदा होती है? जैसे कुत्तेमें होती है, वैसे ही इसमें होती है। इसकी उपेक्षा करो, विरोध मत करो। विरोधसे यह नष्ट नहीं होगा। विरोधसे सम्बन्ध जुड़ता है।

श्रोता—जब हम अहंकाररहित हैं तो हमें सत्यका अनुभव क्यों नहीं हो रहा है?

स्वामीजी—आप चाहते नहीं हैं। केवल चाहनाकी कमी है। हमारा स्वरूप है—'है'। 'है' में कोई दोष नहीं है। 'है' में न राग है, न द्वेष है, न हर्ष है, न शोक है। सबका अभाव होता है, पर 'है' का कभी अभाव नहीं होता—'**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः**' (गीता २। १६)। सत्‌का अभाव नहीं होता, और जिसका अभाव होता है, वह सत् नहीं होता। दोष अन्तःकरणमें आया है, आपमें आया ही नहीं।

बड़ी सीधी-सरल बात है—'मैं हूँ'। दोष 'मैं' में आता है, 'हूँ' में नहीं आता। आप 'मैं' नहीं हो, प्रत्युत 'हूँ' हो। 'मैं' मिट जायगा। दो स्वरूप हैं—अहंकार-सहित और अहंकार-रहित। अहंकार-रहित स्वरूप मेरा है—'**निर्ममो निरहङ्कारः**'। अहंकार-सहित स्वरूप मेरा नहीं है। जिसमें दोष आता है, वह मैं नहीं हूँ। उसके आते ही देख लो कि यह अहंकारमें आया है, मेरेमें नहीं आया है। कितनी सुगम बात है! 'आज' और 'अभी' अनुभव हो जाय! '**वासुदेवः सर्वम्**'!

*** *** ***

श्रोता—साधनकी बातें अच्छी भी लगती हैं, समझमें भी आती हैं, फिर भी जीवनमें नहीं उतर पा रहीं हैं। क्या कारण है?

स्वामीजी—कारण है संसारकी आसक्ति। हृदयमें नाशवान् पदार्थोंका महत्त्व भरा हुआ है। जैसे, बादामका हलवा अच्छा तो लगता है, पर बिना भूखके वह पचता नहीं। पारमार्थिक भूख लगी नहीं है, भीतर नाशवान् चीजोंका आदर ज्यादा है, इसलिये अच्छी लगनेपर भी अच्छी बातें धारण नहीं

होतीं। नाशवान्‌का आदर होगा तो अविनाशीका आदर कैसे होगा? क्योंकि दोनों परस्परविरुद्ध हैं।

जबतक हृदयमें नाशवान्‌का आदर रहेगा, तबतक पारमार्थिक बातें समझमें नहीं आयेंगी और राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष, पाखण्ड आदि अनेक अवगुण पैदा हो जायँगे। **नाशवान् वस्तुका आदर करनेपर सब-की-सब आसुरी-सम्पत्ति आ जायगी!** आसुरी-सम्पत्तिवालेको दैवी-सम्पत्ति कैसे अच्छी लगेगी? रावणको अंगदकी बातें कैसे अच्छी लगेंगी?

अपना पक्का विचार हो जाय कि हमें तो तत्त्वको प्राप्त करना है। नाशवान् चीजें कितनी ही महत्ताकी हों, एक दिन वे रहेंगी नहीं, खत्म हो जायँगी।

श्रोता—नाशवान्‌का आदर कैसे मिटे?

स्वामीजी—सत्संग करो। सत्संग सब काम ठीक कर देता है। **यहाँ बैठकर सुन लेना सत्संग नहीं है, प्रत्युत सच्चर्चा है। जो सत्य परमात्मतत्त्व है, उसका संग (प्रेम) होनेका नाम सत्संग है।** जो 'है', उस सत्य वस्तुका संग हो जायगा, उसमें रुचि हो जायगी, उसका महत्त्व भीतर जम जायगा तो अपने-आप अच्छी बातें धारण होंगी।

अच्छी बातें धारण नहीं होतीं तो वे ऊपरसे तो अच्छी लगती हैं, पर भीतरसे अच्छे लगते हैं नाशवान् पदार्थ! आपका ध्यान सच्चर्चामें है, सत्संगमें नहीं। **सत्‌में प्रेम होता है और असत्‌में आसक्ति होती है।** आपका सत्‌में प्रेम नहीं है, प्रत्युत असत्‌में आसक्ति है। रुपये कमानेमें जो रुचि है, वह रुचि भगवान्‌के नाममें, लीलामें नहीं है।

यह मेरे खूब समझमें आयी हुई बात है कि जब सत्‌में प्रेम होगा, तब असत्‌का स्वतः अभाव हो जायगा। सत्‌का संग होनेसे जड़ पदार्थोंकी आसक्ति मिट जाती है। हमें सत्-तत्त्वको प्राप्त करना है, चाहे दुनिया भला कहे या बुरा कहे, अच्छा माने या बुरा माने। लोग हमें अच्छा मानें, इसकी परवाह मत करो। लोग हमें अच्छा मानें, हमारा आदर हो, हमारी प्रशंसा हो, हमें भोग मिलें, हम आरामसे रहें, हमें कष्ट न हो—यह असत्‌का संग है। इसकी जगह यह हो जाय कि हमारी परमात्मामें रुचि हो जाय, परमात्माकी प्राप्ति हो जाय। भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भगवान्‌से प्रेम माँगो कि 'हे नाथ! जिस प्रेमसे आपको परवश होकर दर्शन देना पड़ता है, वह प्रेम दीजिये'।

भाई-बहन वर्षोंसे सत्संग करते हैं; परन्तु सत्य परमात्मतत्त्वमें जैसी रुचि होनी चाहिये, वैसी रुचि नहीं है! शर्म आनी चाहिये!! सत्यके लिये ही तो यह जीवन है। भाइयोंसे, बहनोंसे प्रार्थना है कि सच्चर्चा करते तथा सुनते हुए बहुत दिन हो गये, अब सत्यमें प्रेम होना चाहिये। एकान्तमें भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! हे प्रभो! मैं आपको भूलूँ नहीं। मेरा आपके चरणोंमें प्रेम हो जाय। आपमें विश्वास हो जाय'।

केवल मनुष्य ही परमात्मप्राप्तिका अधिकारी क्यों है? कारण कि मनुष्यमें विवेकशक्ति है। मनुष्यजन्मकी महिमा विवेकको लेकर है, शरीरको लेकर नहीं। नाशवान्-अविनाशी, सत्-असत्, कर्तव्य-अकर्तव्य—दोनोंको अलग-अलग जाननेका नाम 'विवेक' है। इस विवेकके कारण ही मनुष्यकी दृष्टि परिणामकी तरफ जाती है कि भोग आरम्भमें तो सुन्दर दीखते हैं, पर उनका परिणाम बड़ा खराब होता है—

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्‌ ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥

(गीता १८। ३८)

'जो सुख इन्द्रियों और विषयोंके संयोगसे होता है, वह आरम्भमें अमृतकी तरह और परिणाममें विषकी तरह प्रतीत होता है; अतः वह सुख राजस कहा गया है।'

आपलोगोंसे प्रार्थना है कि एकान्तमें बैठकर विचार करो कि हमें रुपये अच्छे लगते हैं कि भगवान्‌का नाम? भगवान्‌की महिमा अच्छी लगती है कि भोगोंकी महिमा? हमारी स्वतः-स्वाभाविक रुचि किधर है, भगवान्‌की तरफ या संसारकी तरफ? विचार करके भोगोंकी रुचिको हटाओ। अपनी वृत्तिको संसारसे हटाकर परमात्मामें लगानेकी विवेकशक्ति आप सबमें है। अपनी विवेकशक्तिका आदर करो, उसको महत्त्व दो। **अपनी विवेकशक्तिका आदर करना सत्संग है।** आदर करनेसे वह विवेक ही तत्त्वज्ञानमें परिणत हो जायगा। इसलिये अपनी विवेकशक्तिको बढ़ाओ। जैसे गायके शरीरमें रहनेवाला घी गायके काम नहीं आता, ऐसे ही जबतक आप विवेकका आदर नहीं करोगे, तबतक विवेक आपमें रहता हुआ भी आपके काम नहीं आयेगा।

आपसे प्रार्थना है कि रोजाना घण्टा-अधघण्टा विचार करो कि सत्संग करते इतने वर्ष हो गये, क्या लाभ लिया? आप कहते तो हो कि हम इतने वर्षोंसे सत्संग करते हैं, पर विचार करो कि एक वर्षमें आप कितने महीने सत्संग करते हो? एक महीनेमें आप कितने दिन सत्संग करते हो? और एक दिनमें आप कितने घण्टे सत्संग करते हो? कभी उम्रमें एक दिन भी पूरा लगाया है क्या?

*** *** ***

श्रोता—सत्संग करते हैं, फिर भी शान्ति नहीं मिल रही है!

स्वामीजी—तो सत्संग क्यों करते हो? सत्संग करे और शान्ति न मिले—ऐसा हो नहीं सकता। अगर शान्ति नहीं मिलती है तो आप सत्संग करते नहीं, सत्संगकी बातोंको समझते नहीं।

श्रोता—भगवान्‌का मिलना क्या है?

स्वामीजी—प्यासे आदमीको जलका मिलना क्या है? जल मिलनेपर तृप्ति हो जाती है। फिर जलकी इच्छा नहीं रहती। ऐसे ही भूखेको भोजन मिलनेपर तृप्ति हो जाती है। इस तरह भगवान्‌के मिलनेपर सब प्रकारकी तृप्ति हो जाती है। वैसी तृप्ति सब-का-सब संसार मिलनेपर भी नहीं हो सकती। उनके मिलनेमें कोरा सुख-ही-सुख है, दुःखका लेश भी नहीं है! वहाँ सुखकी आखिरी हद है। भगवान्‌की प्राप्तिसे बढ़कर कोई लाभ हुआ नहीं, है नहीं, होगा नहीं, होना सम्भव ही नहीं!

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६। २२)

'जिस लाभकी प्राप्ति होनेपर उससे अधिक कोई दूसरा लाभ उसके माननेमें भी नहीं आता और जिसमें स्थित होनेपर वह बड़े भारी दुःखसे भी विचलित नहीं किया जा सकता।'

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजकी वाणीपर आधारित

'गीता प्रकाशन' का शीघ्र कल्याणकारी साहित्य

१. **संजीवनी-सुधा**—'गीता साधक-संजीवनी' पर आधारित शोधपूर्ण पुस्तक।
२. **सीमाके भीतर असीम प्रकाश**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
३. **बिन्दुमें सिन्धु**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
४. **नये रास्ते, नयी दिशाएँ**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
५. **अनन्तकी ओर**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
६. **स्वातिकी बूँदें**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
७. **अनुभव-वाणी**—चुने हुए अनमोल वचन। अँग्रेजी-भाषान्तरसहित।
८. **सहज गीता** (अँग्रेजीमें भी)—नये पाठकोंके लिये 'साधक-संजीवनी' के अनुसार गीताका सरल हिन्दीमें भावार्थ।
९. **हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं** (गुजराती व अँग्रेजीमें भी)—इस प्रार्थनाके रहस्य तथा महत्त्वका अद्‌भुत वर्णन।
१०. **कृपामयी भगवद्‌गीता** (गुजरातीमें भी)—गीताकी महिमा और उसकी विलक्षणताका वर्णन।
११. **लक्ष्य अब दूर नहीं** (गुजरातीमें भी)—परमात्मप्राप्तिके विविध सुगम साधनोंका अनूठा संकलन।
१२. **सहज समाधि भली** (गुजरातीमें भी)—'चुप साधन' का विस्तृत विवेचन।
१३. **अपने प्रभुको पहचानें**—भगवान्‌के समग्ररूपका विस्तृत विवेचन।
१४. **एक सन्तकी अमूल्य शिक्षा** (क्या करें, क्या न करें)
१५. **विलक्षण सन्त, विलक्षण वाणी**—प० श्रीस्वामीजी महाराजकी वसीयत-सहित।
१६. **गोरक्षा—हमारा परम कर्तव्य**
१७. **क्या करें, क्या न करें ?**—आचार-व्यवहार संबंधी शास्त्र-वचनोंका अनूठा संग्रह।
१८. **भवन-भास्कर** (परिशिष्ट-सहित)—वास्तुशास्त्रकी महत्त्वपूर्ण बातें।
१९. **सुखपूर्वक जीनेकी कला**—सर्वोपयोगी प्रश्नोत्तर।
२०. **क्या आप ईश्वरको मानते हैं ?**—साधकोंके लिये चेतावनी।
२१. **बोलनेवाली श्रीमद्भगवद्गीता** (अर्थसहित)—इसे पढ़नेके साथ-साथ शुद्ध उच्चारणमें सुन भी सकते हैं।
२२. **ग्लोब गीता**—आकर्षक ग्लोबके आकारमें सम्पूर्ण गीता।

गीता प्रकाशन,
कार्यालय—माया बाजार, पश्चिमी फाटक,
गोरखपुर—273001 (उ०प्र०)
फोन—09389593845; 07668312429
e-mail: radhagovind10@gmail.com